नृप कीन्हे असमेदादि[1]† जग्य,
बहु दांन दिऐ लषि द्विज गुणग्य‡।
यह जस फैल्यौ चहु दिसि मझार,
सुनि विप्रादिक आये अपार ॥१६४॥
तिनु ब्रंह्मपुरी मैं दै वसाय,
धन धांन्य[1] ठौर दिय अधिक राय।
फुनि पूरव दक्षिण वीचि और,
गिर परि अंवागढ विषम ठौर ॥१६५॥
चहुधां पुर कै उपवन अनेक,
तरु सुफल फले तिनमैं प्रतेक।
फुनि वन गिर सोभा अति लसंत,
तहां ध्यान धरत मुनिजन महंत ॥१६६॥

दोहा · हुतौ राज अंवावती, सो जयपुर मैं ठानि।
करन लगे जयसाहि नृप, सुरपति सम सुष दानि ॥१६७॥
भये भूप जयसाहि कै, पुत्र दोय अभिराम।
ईस्वरस्यंघ* भये प्रथम, लघु माधोस्यंघ[1]†† नांम ॥१६८॥
रांमपुरो[1] दुर्ग भान कौ, ताकौ लै कै राज।
दीन्हौ माधोस्यंघ कौं, सगि दये दल साज ॥१६९॥
बहुत वर्ष लौं राज किय, श्री जयस्यंघ अवनीप।
जिनकै पटि बैठे स्वदिनि[1], ईस्वरस्यंघ महीप ॥१७०॥
तिनकी दांन कृपान कौ, जग जस करत अपार।
जिन सौं जंग जुरे तिन्हैं, करि छांड़े पतझार ॥१७१॥

---

१६४ १ असमेधादि।
१६५ १ धान।
१६८ : १ माधव।
१६९ १ रामपुरौ।
१७० : १ सुदिन।

---

†Aswamedh Yagya.
‡Able Brahmins
*(b 1721—d. 1750 A.D) Also see the "Isvaravilasa-Mahakavya" (Rajasthan Pura Granthmala No 29)
††(1750 67 A D)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक – पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ७३

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

प्र का श क

राजस्थान राज्य संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

मांन-वस-भांन जयसाहि कै समान स्याम,
हरत गुमान निज दान सौं घनद के॥
मोती अनहद[२] के जराऊ साज सदके,
कर हार रद के अनाथ दीन दरद के।
जीन जवूनद के तुरंग करी-कद के,
मतंग मति मद के कढत सदा सदके॥१७७॥

सोरठा : चढी फौज करि कोप, भिरि भागे[१] जट्टा प्रवल।
नई चढी यह वोप, कछवाहन[२] की तेग कौं॥१७८॥

दोहा : तिनकै पटि वैठे पुहमि, प्रथ्वीस्यघ नरिंद।
सकग प्रजा पोषन मनौं, प्रगटे आय सुरिंद॥१७९॥

छंद भुजग प्रयात उदै अग[२] अंवावती पीठि उग्यौ,
मनौ[३] अर्क सौं[४] उग्र तेजा सुहायौ।
अन्योक्त[१] : धरै धर्म सेतून के दिव्वि वानै,
वडे भाग कौ छत्र माथै तनायौ॥
म्हाराज[५] राजेस्वरी[६] की क्रपा[७] तैं[८],
म्हाराजि राजान[९] कौ विश्व भायौ।
प्रथी पालिवे कौ प्रथीराज[१०] मानौं,
प्रथीस्यघ कौ धारि कै रूप आयौ॥१८०॥

सोरठा[१] : प्रथ्वीस्यंघ विख्यात, जा दिन तें भूपति भऐ।
मिटे सकल उतपात, सुषी भई सारी प्रजा॥१८१॥

दोहा : लषौ भागि-वल[१] भूप कौ, मरचौ गयो[२] रिपु जाट।
भऐ सत्रुतें मित्र सिष, इहै पुन्य कौ थाट॥१८२॥
नर-नारी दे आसिष, प्रथ्वीस्यंघ नरेस।
अचल राज करि जगत की, रक्ष्या[१] करौ हमेस॥१८३॥

---

१७७ २ हरद।
१७८ १ भाग्यौ। २ कछवाहनि।
१८० १ अन्योक्ति। २ भृ ग। ३ मनौं। ४ missing। ५ महाराज।
६ राजेश्वरी। ७ क्रिपा। ८ तैं। ९ राजानि। १० प्रथ्वीराज।
१८१ १ सौरठा।
१८२ १ भाग्यबल। २ गयो।
१८३ : १ रक्षा।

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः, अखिल भारतीय तथा विशेषत राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर;
ऑनरेरि मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएण्टल सोसाइटी, जर्मनी,
निवृत्त सम्मान्य नियामक (ऑनरेरि डायरेक्टर),
भारतीय विद्याभवन, बम्बई, प्रधान सम्पादक,
सिंघी जैन ग्रन्थमाला, इत्यादि ।

ग्रन्थांक ७२

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

सम्पादक

श्री पद्मधर पाठक, एम०ए०

शोध-सहायक (प्रवर)

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०२० | भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८५ | खिस्ताब्द १९६४

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य : ३.७५ न०पै०

मुद्रक : जगदीशचन्द्र स्वर्णकार, अजन्ता प्रिण्टर्स, जोधपुर.

Rajasthan Puratana Granthamala

Published by the Government of Rajasthan

A series devoted to the publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Old Rajasthani-Guarati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular.

General Editor

Acharya Jina Vijaya Muni, Puratattvacharya

Honorary Member of the German Oriental Society (Germany), Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Visvesvarananda Vaidic Research Institute, Hosiyarpur, Punjab, Gujarat Sahitya Sabha, Ahmedabad, Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, General Editor, Gujarat Puratattva Mandira Granthavali, Bharatiya Vidya Series, Singhi Jain Series, etc etc

No 73

BUDDHI VILASA

OF

BAKHAT RAMA SAHA

Published

Under the Orders of the Government of Rajasthan

by

The Director, Rajasthan Oriental Research Institute, JODHPUR (Rajasthan).

V S 2020] *All Rights Reserved* [1964 A D

BUDDHI VILASA

OF

BAKHAT RAMA SAHA

EDITED

(with introduction, appendices, variant readings etc)

BY

PADMA DHAR PATHAK, M A,

Research Assistant, (Senior),

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur

PUBLISHED

under the orders of the Government of Rajasthan

BY

The Director, Rajasthan Oriental Research Institute,

JODHPUR (RAJASTHAN)

V.S. 2020] *Price 3 75 nP.* [1964 A.D

CONTENTS

1. Contents of the Text	I-II
2. Foreword	III-IV
3. Introduction	1-7
4. Appendix to the Introduction	8-20
5. Text	१-१७३
6. Verse order in A & B	१७४-१७८
7. Errata	१७६

CONTENTS OF THE TEXT

मगलाचरण	१— २
स्वर्ग नाम	२
नरक प्रभा नाम	२— ७
नृप वश वर्नन	७—१४
नगर उतपति वरनन	१४—३१
भाषा ग्रन्थ की	३१—३३
सघादि उतपति	३३—३४
आचारिज आदि गृहस्थाचार-यति-वर्नन	३४—३५
मुनि, श्रावक कौ उपदेस वर्नन	१४—४१
मुनि शास्त्र करता नाम वर्नन	३५—४१
विसघ उतपति वर्नन	४७
सघ नाम वर्नन	४७
भद्रवाहु चरित्र	४७
सोलह स्वपन वर्नन	४८—५६
उपकर्ण नाम	५६—५७
चौरासी वोल छंद छपै	५७—६८
द्रावड सघ उतपति वर्नन	६८
ज्यापनीय संघ उतपति वर्नन	६९
काष्टा सघ उतपति वर्नन	६९—९०
निपिछ्छ सघ उतपति वर्नन	७०—७१
कुदकुंदाचार्य वर्नन	७१—७९
मडलाचार्य उतपति वर्नन	७९—८०
परिपाटी भट्टारकानि की वर्नन	८०—८१
पट्टावली वर्नन	८१—८५
श्रावक उतपति वर्नन	८५—८६
षाप वर्नन	८६—८७
षडेलवाल उतपति वर्नन	८७—९४
क्रिया वर्णने	९४—९५
विनती	९५—१०१
रजस्वला वर्नन	१०१—१०४
दान वर्नन	१०४—१०५
मौनि वर्नन	१०५—१०८
सूवा सूतिग वर्नन	१०८
सूतिग वर्नन	१०८
श्रावग धर्म वर्नन	१०९—११३
तियनु कौं उपदेस वर्नन	११४
असत्ति वर्नन	११४
अचोर्य व्रत वर्नन	११४
परिगृह वर्नन	११५
सप्त विसन वर्नन	११५—१२४
तीर्थंकर पिता माता चिन्ह	
जनम नगरी वर्नन	१२४—१२६
सप्त प्रकार माला जपिवा	१२६
वेद निरनय कथन	१२६—१२७
भिन भिन वेद निरनय	१२७—१२९
च्यार गति लछिण वर्नन	१२९—१३१
ग्रहादिक पूजन	१३१
प्रथ्वी नाम	१३१
कुलकर नाम	१३१
कामदेव नाम	१३२
चक्रवर्त्ति नाम	१३२
वलिभद्र के नाम	१ २
नारायण नाम	१३२

प्रति-नारायण नांम	१३३
नव नारद-नाम	१३३
ग्यारह रुद्र-नाम	१३३
सोलह सती-नाम	१३३—१३४
तीर्थंकर मुक्ति आसन वर्नन	१३४
तीर्थंकर कवारे गए तिनके नाम	१३४
श्रावक के सप्तदश नित्ति-नेम वर्नन	१३४—१३५
ग्यांन सूर्योदय नाटिकेन श्लोक	१३५—१३६
आगम को वर्नन	१३६
जीवं उतपति वर्नन	१३६—१३७
सूरोदये मतेन वर्नन	१३७
गर्भ नाम-सग्या वर्नन	१३७—१३८
पंच-परमेष्टी गुन वर्नन	१३८—१३९
आठ मंगल-द्रव्य वर्नन	१३९—१४०
सिद्ध गुन वर्नन	१४०
आचार्य गुन वर्नन	१४०—१४१
उपाध्याय गुन वर्नन	१४१—१४५
साधु गुन वर्नन	१४५—१४६
श्रुत भेद ग्यान द्वादसाग बानी वर्नन	१४६—१४७
सूत्र वर्नन	१४७
प्रथमान जोग वर्नन	१४७—१५१
श्रावग क्रिया वर्नन	१५१
चौदह विद्या व रतन नाम वर्नन	१५१
कलिकाल दोष उपद्रव वर्नन	१५१—१५५
एक सौ आठ पुराणोक्त वर्नन	१५५—१६८
तरेपन भाव कथन	१६८—१७१
केवल ग्यान कथन	१७१—१७२
पद्मनदि पचीसका दानाधिकार वर्नन	१७२
कवि लघुता वर्नन	१७२—१७३

FOREWORD

The Buddhi-Vilasa, which we are placing in the hands of scholars as the seventy-third number of the Rajasthan Puratan Granthmala, is a work which appears to have been written primarily for rendering the 'Nitisāra' etc, into a simple language for the use of common people of the Jain sect The description of the chain of rulers and the description of the foundation of Jaipur, a new city by Sawai Jai Singh have come in secondarily, but prior to the main work It had, however, become a practice among the authors of the medieval times to give adequate importance and respects to the rulers of the area or state where they lived in

The historical description of the ruling family of Jaipur and that of the foundation of the city of Jaipur though secondarily implied in the work has attained primary importance, the latter being a contemporary evidence as remarked by the editor in his introduction

The Buddhi-Vilasa is not a poetic work, but a narration of facts in simple metrical language However, the author could not restrain his sense of poetic appreciation as, he has adopted some illuminating couplets of other poets in praise of the rulers of Jaipur From the language point of view we find in the work a queer mixture of the Braj and the Dhoondari dialect spoken in Jaipur The resultant form of speech tells us of the influence of the Braj-bhasa over the Dhoondari and vice-versa A small lexicon of all such words can be prepared for the students of language

Besides the history of Jaipur and the interesting description of the foundation of the new city, the author has made references to some important and interesting events relating to the development of the Digamber Jain sect particularly in Jaipur and in Rajasthan in general The events relating to the practice of the use of 'langoti' and riding a palanquin adopted by Bhattarak Prabha Chandra of Chittor during the time of Peroz Shah, (p 78), the origin of the Khandelwal caste among the Jainas (pp 87-88), and lastly the ill-treatment received by the Jainas at the hands of one Shyam Tewadi and their rescue by the courtsey of Sawai Madhosingh I (pp 151-52) described by the author as an eye-witness are the facts which need be verified by historical evidences These provide very good material for study and research

B

Ms No	1955
Name	Buddhi-Vilāsa
Copyist	Syōjī Rāma Bhāvasā, as desired by Jeevaṇa Rāma Śāha S/o Bakhata Rāma Śāha
Material	Paper, of an inferior quality
Script	Devanāgarī
Extent of the Ms	74 Folios, Complete
Size of leaves	8 cm ×6 cm
Number of lines	Average 15
Letters	33-35 per line
Writing	Legible, Corrections in the text with red pigment
Age	Samvat 1863 (i e A D 1806)
Begins	१ ॥र्वं ॥ उं नमः सिद्धेभ्य ॥
Ends	इति श्री बुद्धिविलास नांम ग्रंथ संसपूर्णंम्। शुभ भवत् ॥ संवत् १८६३ का मिती आसोज शुक्ल ६ सोमवार लिषाइत जीवणरांम साह वेटा बषतरांम का दसकत स्योजीराम भावसा का लिषवा मे असुद्ध षोट होय तो सुद्ध करि लीज्यौ पाठ माफिक लिषाइत ज्यौ वाचे सुणे सुणावै ष्यांनै जथा जोग्य बचोज्यो श्रीरस्तू कल्याणमस्तु। ॥श्री॥१ ॥श्री॥२ ॥श्री॥३ ॥श्री॥४ ॥श्री॥ रस्तू।

Bakhata Rāma's indebtedness to Jai Candra Chābaṛā in practically all his writings The BV, as Śāstri has put it, was regularly sent to Jai Candra Chābaṛā for review, and in support we reproduce a few remarks from Jai Candraji himself asking Bakhata Rāma to revise the text

"जैसे फेरि पाना १९ आया सो वांच्या त्यामे, तारां का विमान को परिणाम सर्व को पौण कोस को लिख्यो सो तिलोकसार मैं घाटि-बाधि भी लिख्यो छै।"

"पटलनि मैं दूजे पटल मैं जघन्य आयु सागर की लिखी सो आध सागर की चाहिजे सो ठीक करो।"

"छंदनि मैं मात्रा कही कही हीनाधिक हैं तथा तुक भी कहीं कहीं अणमिल हे सो संभालि ल्यों।"—*p 102 of the article.*

II

The Author

Bakhata Rāma Śāha son of Pema Rāja Śāha was a native of Chātsū situated about twenty-seven miles South-East of modern Jaipur The present text is essentially based on the well-known precepts of the Jaina religion and as such, the author has no claims to all original Besides the BV, we have another work assigned to him namely the "Mithyātva Khandana Nātaka",† (मिथ्यात्व खंडन नाटक) once again based on standard Jaina texts Both the works refer to Bakhata's association with Jaipur where he had patronised the temple of Laskarī as a frequent visitor Bakhata was a Jaina by religion and a follower of the Digambara school

From the text itself we come to know that Bakhata Rāma Śaha took up the work as desired by Paṇḍit Kalyāna and Muni Guṇakīrti of the temple of Laskarī Relevant extracts from the "Mithyātva Khandana Nātaka" also, supplementing the BV are given below to show how much they are in harmony with each other The Nātaka is dated Samvat 1820 (i e 1763 A D)

"ग्रथ अनेक रहैस्य लषि, जो कछु पायौ थाह।
वषतराम वरननु कियो, पेमराज सुत साह ॥१४१४॥
आदि चाटसू नगर के, वासी तिनिकौं जानि।
हाल- सवाई जैनगर, मांहि वसे हैं आनि ॥१४१५॥
तहां लसकरी देहुरे, राजत श्रीप्रभु नेम।
तिनकौ दरसण करत ही, उपजत है अति प्रेम ॥१४१६॥"

Similarly couplet No 1411 carries a hint to Bakhata's regard for Paṇḍit Kalyāṇa

Nāthū Rāma Premī has mentioned one more work by Bakhata Rāma namely the "Dharma-Buddhi Kī Kathā", (धर्म बुद्धि की कथा) so far, nowhere available in any of the Digambara Grantha Bhandār's of Jaipur

Certain fragmentary religious couplets find a mention of mere "Bakhata" which as the catalogue of the Bhandārs would reveal have been equated with the same Bakhata Rāma Śāha on the obvious conjecture as to be his pen-name Such sketchy references slip away unless we could establish that they stood for our author To quote a few lines from such

---

†*The autograph copy available in the temple of Pātodī, as gutkā No 2 Hereafter mentioned as MKN*

miscellaneous couplets do such sentences, as "मेरा वपत भला है" or "तवही तू जानि लीज्यौ मेरा वपत फला है', land us anywhere ? Although they belong to a period about Samvat 1829 (i e 1772) but it may clash with reality for want of evidence Besides, there are all chances of several contemporaries having the same name, as is actually the case with one Bakhata Rāma Gōdhā, who was a contemporary of our author, and most probably Premi mistook him for Bakhata Rāma Śāha when he quotes the "Dharma-Buddhi kī kathā" Couplet 86 of the text finds a mention of Kavi 'Rāma', and if probabilities be given a long rope we can take it to be the pen-name of our author, being the second word of his full name But, nowhere in the text he does it again We can, therefore, safely keep aloof from such trivialities, as they unnecessarily drag us towards speculations We have enough in the BV and the MKN regarding Bakhata Rāma Śāha to allow us to proceed with a certain degree of confidence Similarly the text of the BV is very much intact in nature and we have very little to gain by a third copy

III

Age

The work is dated Samvat 1827 (i e 1770 A D), the year Bakhata Rāma Śāha could finish this work A substantial portion of the work is a mere translation into a simpler language of the well-known Jaina texts i e the 'Nītisāra' of Indraganī and the like Other names occuring in the text have not been reproduced here to avoid sheer repetition It reflects the honesty of the translator to have openly acknowledged the source of his writings The work is thus the essence of different centuries, except the portion, contemporary to our author

IV

Importance of the work

The BV is a work on religion The obvious gravity in the subject readily accounts for preachings and morality occuring in quick succession However, diversions from the 'Nītisāra', and other old texts are many and they lend the work a new look and provide occasion for editing the text

In about twenty-three pages (6 to 28, of the printed text) the author has taken up the history of the Kacchwāhā rulers of Āmber and brings it up-to-date to his own times The author belonged to Jaipur and consequently this local influence is repeatedly marked in the text Elsewhere also, at several places he has brought Jaipur into picture This brings us near to a wider conclusion besides revealing the secret behind editing such purely religious works To the modern historian the BV

would have served little purpose, if the author had satisfied himself with a bare naming of the Kacchawāhā rulers On the other hand, he has exhaustively dealt with the Jaipur of the times of Sawai Jai Singh as an eye-witness (also noticeable from the remarkable ease in which he has done it) In every case this portion is his own contribution to the text

One may raise the question, whether Bakhata Rāma Śāha was an eye-witness to that portion of the text where he has described the prosperity and other aspects of the new city of Jaipur founded by Sawai Jai Singh His MKN was completed twenty-one years after the death of Jai Singh in 1743 A D The grave nature of both the works is a clear index to his having attained maturity as a grown up man Besides, his works even as translations are not mere mechanical reproductions of old texts, as is usually the case with professional scribes Bakhata Rāma Śāha had regularly exercised his own intellect and this also exposes the sedate in him If one were to judge this work as a source of contemporary history it stands in gain in comparison with whatever little information we have on the medieval period of Indian History based mainly on the writings of the Persian Court-chroniclers The Non-Persian sources have not yet been studied properly and historians are very much unaware of such works as the BV, where historical passages appear and re-appear in works of the like nature Possibly all such writings may no more change our conclusions towards the common trend of medieval Historical writings i e a mere record of simply what happened and when, and that too within the rigid framework of a predominantly Political History Medieval scholarship had certain serious limitations They were all battle loving historians bare to the bone

Even in the BV there is the too common a deification of the Kings and their faultless deeds, but at the same time we come across a useful account of the new city of Jaipur, which considering its extent is not accidental, but motivated with a desire to give a contemporary account of great interest It is most useful to pick up all such passages, even if they occur in manuscripts on subjects other than History. Besides, in such works as the BV, the author enjoys a certain degree of freedom in telling the truth which was rarely enjoyed by official historians Thus way we can raise volumes of such 'relevent to history' passages While describing the city of Jaipur, the author has not viewed events exclusively, from the angle of small social units, and both the king and his subjects have played their role in making the Kacchawāha Capital, from an Eastern metropolis Founded by the famous astronomer, Sawai Jai Singh, it takes its name from that illustrious prince to whom the essence of history lay in change He began to build with a passion with an insatiable curiosity and energy. The "Pink-city" rose with fantastic speed He never cared to be surroun-

ded by puppets to keep his pride high, rather he chose great men, from all quarters of the country It is as a statesman, legislator, and scientist that his name has come down to posterity

Bakhāta Rāma Śāha has shown his awareness of the times of Prithvī Singh of Jaipur (1767-1778 A D) and the BV is dated A D 1770 He might have survived even longer, but as for his literary career the BV marked a close Had he lived to see the reign of other princess that followed Prithvi Singh, he would not have missed to mention their names as he has carefully been doing with the royal lineage without indulging into chronolcgical overlapping either He has hurriedly passed through the reign of Prithvī Singh, and his predecessors with an awareness of their individual places in History limited to a paragraph or, at the most, a page, but coming to Sawai Jai Singh, he has shown that the astronomer cannot be put between the covers of a volume His reign-period hung suspended in Hinduism The range in mental abilities of Jai Singh must have been enormous

Having dealt with the main attraction of the work, it is essential to cover in brief the subject-proper which in extent is more mountaneous than the mole-hill, I have been discussing so far The introduction here provides no occasion for a detailed account of the Digambara Paṭṭāvali's, well-known works like the Tattwārtha—Sūtra (तत्वार्थ सूत्र) etc as having already undergone scores of popular editions Beginning with the Jaina Geography the author has traced the entire history of the Digambara sect, where the most interesting portion happens to be the one that deals with the establishment of different Jaina seats (gacchas, गच्छ) at places like Jaipur, Sāngāner, Chittor, Nāgaur, Raṇthambhōr etc They tell us of the spread of Jainism in Rājputānā Scholars are of the view that the main purpose of our auhor was to arrest the growing strength of the so-called "Thirteen-Panthīs" (तेरह पंथी) whose ways were not liked by serious divines who grew alarmed

In the text there is a mention of the open conflict between the Jainas and the Vaiṣnavās of Jaipur, particulary during the time of Sawai Mādho Singh I The author has passed personal remarks against one Shyāma Tewāḍi—a troublesome Vaiṣnava Although very much in the nature of a direct hit against the Vaiṣṇavās, however, the author has nowhere played the bigot This portion of the work needs a study The rulers of Jaipur had regard for both the Jainas and the Vaiṣnavās, and did their best to find ways and means acceptable to both, on occasions of conflict

Other passages of the text, deserving an elaborate treatment, have been noticed immediately in the following pages. Similarly, the various foot-notes running parallel with the text would prove useful.

In the end, I take this opportunity of expressing my deep regard for the revered Āchārya Muni Śri Jinavijayji Mahārāja, Honv Director of the Institute, and Shri Gopal Nārāyan ji Bahurā, Deputy-Director, who have given me the opportunity to work on this ms under their guidance and constant encouragement

Rajasthan Oriental Research Institute,
JODHPUR,

Padmadhar Pathak

12 December, 1963

APPENDIX A

'नगर उतपति वरनन' P.14, L.13.

Eight miles to the South of Amber, the previous capital of the Kacchwahas, Jai Singh founded a new city of Jainagar or Jaipur The nucleus of Jaipur was the palace and garden at Jai-Nivas, the foundation of which was laid in A D 1725 Then followed the construction of the 'Chandra-Mahal' and the 'Jai-Sagar', but the plan and the construction of the entire city as such, began from the year 1727

Jai Singh observed all the religious practices required at the time of the foundation laying ceremonies as prescribed in the Hindu texts This work he assigned to his 'guru' and the official high-priest named Jagannatha Samrata Due propitiatory rites like the 'Vinayaka Shanti', 'Vastu-Shanti , and the Nava-graha Shanti' were all performed by Jagannatha If what the 'Manasara', (a well-known treatise on Hindu architecture) says be followed, the astrologer priest must be proficient in the Vedas and Sastras Jagannatha fulfilled this qualification He was granted eight 'bighas' of land, free of rent in the village Hathroi, now a part of the present Jaipur The deed or 'patta' granted to Jagannātha is given below, as it helps us deciding the exact hour and day of the foundation of the new capital

'डोल करार मिती जेठ सुदि ८ साल सम्वत १७८४ पुन्य उदिक धरती वं० जगनाथजी समराट ने जो सवाई जयपुर वसायो ती नेमत मिती पोस वदि १ सम्वत साल १७८४ ने धरती वीघा ८ अके आठ सकलप करी सो वास्ते धरती के मीती माह सुदि १५ सम्वत १७८४ मारफत किसनराम की अरज पहोंची हुक्म हुवा धरती वीघा आठ छोयो ती मधे वीघा ४ सवाई जयपुर की वाग के वासते व वीघा च्यार नजीक गाव सवाई जयपुर का की स्यालु की दीज्यो वरसाले दीवाण नारायणदास किरपाराम दाखिल वाके करो धरती वीघा आठ मा० तफसील सवाई जैपुर की वाग के वास्ते वीघा च्यार ४ गाव मोतपुर नजीक हयरोही मधे वा स्यालू की वीघा च्यार ४ ।

मु० याददास्ती व मोहर कीसनराम वाके दसकत ।

In all a sum of Rupees 1083 and annas five were spent in the ceremony, as supported by the following document contemporary of the event

"डोल करार मिती फाल्गुन वदि १ सम्वत १७८४ पुन्य जो सवाई जयपुर नवौ बसायौ तीठै मिती पोस वदि १ सम्वत १७८४ विन्दायक सांती, वा वासुत सानी, नोगिरह सांती करवाई त्याने लाग्या सौ रुपया १०८३।-) के वास्ते मारफत स्वामरास्ट नाथजी की मिती माह वदि ११ सम्वत १७८४ अर्ज पहुची हुक्म हुवा सीगे पुन्य के दाखल कर तनखाह खजाना माल इतमाम खोज पता का परी तनखाह कर द्यो वरसाले दीवान नरायणदास वा किरपाराम दाखल वाके करो रुप्या वसुली एक हजार तीरासी आना पाच दीज्यो १०८३।-)।

मु० यादीवास्तीन महोर स्वामरास्ट नाथजी वामै दसषत दीवानीयान दा० स्याहे हजूरी मिती माह सु० ६ सम्वत १७८४ किता १—।

Both the documents have been used above because there is lack of unanimity among scholars as regards the exact hour and date of the foundation ceremony Copies of these were formerly preserved in the 'Dewani Huzuri' office of the erstwhile Jaipur State These may now be verified from the records of the Rajasthan Archives Department, Bikaner. Also, the pattas for the grant may te traced out in the family records of the Samrat Obviously, depending upon a source secondary in nature, however, such evidences have more weight than later records Other works that differ in dates need not be cited here till the Jaipur Pothikhana is thrown open for scholars and the original documents studied

Sawai Jai Singh was deeply interested in the study of town-planning and he had read many books on the subject The new city built by him was planned by Vidyā Dhara, a Brāhmin from Bengal The entire theoretical lay-out of the city was his In his memory one street and a garden i e 'Vidyā Dhara ka Rasta' and 'Vidyā Dhara ka Bagh,' (in the Purana Ghat) still exist in Jaipur.

The rise of this family of Brāhmins from Bengal is due to Rājā Mān Singh of Amber On his return from the Bengal expedition he is said to have brought with him an idol of 'Śilādevī' from there, and is even to this dav kept in Amber With the idol of the Goddess accompanied Her hereditary worshipper Purohita Ratnagarbha Sārvabhauma Bhaṭṭācārya, a "Pāścātya Vaidika Brāhmana" Vidyā Dhara belonged to this very family† Deb, has given the

†*Vidyadhara—Bimalcharan Deb*
Annals of the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona pp. 212-218, Vol 28, 1947

genealogical tree of his family begining from Rājendra and closing with the mention of Śivarāma (1904-5 A D)

Vidyā Dhara was appointed 'Diwan' after the death of his maternal uncle Kishan Rama Later on, when Sawai Madho Singh ascended the throne in 1752, Vidyā Dharā withdrew himself from the scene He earned the fury of Mādho Singh who confiscated all his possessions, and the illustrious family vanished from the stage of local history

The BV makes no mention of Vidyā Dhara, because it is more a description of a general nature It was left to the interested to fill up the blank The 'Iśvara-Vilāsa-Kāvya'‡ by Krṣṇa Kavi is dated 1744, written hardly a year after the death of Jai Singh In the tenth canto (सर्ग) of his work, he has clearly mentioned Vidyā Dhara

"बगालयप्रवरवैदिकगौडविप्र क्षिप्रप्रसादसुलभ सुमुख· फलावान् ।
विद्याधरो जयति मत्रिवरो नृपस्य राजाधिराजपरिपूजितशुद्धबुद्धि· ॥"३८॥

There are many more passages in this work that remind us of Vidyā Dhara and his ancestory

Girdhārī wrote the 'Bhōjana-Sāra' in his capacity as the court-poet of Jai Singh This work is dated A D 1739 and is yet unpublished * The 182nd couplet of this work on dietetics quotes the name of Vidyā Dhara as the architect of the new city

पुरा करें बहु हरष करि, मन महि मोद बढाय ।
विद्याधर सों बोलि कहि, सहर सु एक बसाय ॥

Vidyā Dhara thus occupied a significant position in the history of Jaipur Col James Tod, has spoken of his genius as an adept architect and astrologer He has fallen into the error of holding Vidyā Dhara as the follower of Jainism, and a Jain by birth as well He writes, "Vidya Dhara, one of his chief coadjutators in his astronomical pursuits, and whose genius planned the city of Jaipur, was a Jain, and claimed spiritual descent from the celebrated Hemachandracarya, of Nahruala, minister and spiritual guide of his namesake, the great Siddhrāja Jai Singh "

The annalist does not mention the source of his information This is in brief the initral story of what our author has prefered to

‡*Pub in the 'Rajasthan Puratana Granthmala' no 29*
**Preserved in the Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona*

sum up in a mere sentence i e. "नगर वसायौ यक नयौ, जयस्यंघ सवाई ।" He then proceeds to describe the condition of the people, who were attracted to settle there because of the general economic prosperity

---

(२) "ल्याऐ नहैरि वाजार माहि, विचि मै वंवे गहरे रपाहि ।
चौकनि में कुंड रचे गमीर, जग पीवत तिनकौं मिष्ट नीर ॥" १०१॥
p 15, I (9-12)

A canal was built to supply water to the new city. Ananda Ram Mistri was commissioned to survey the neighbourhood His report written on 16th July, 1726 is still preserved The source selected was the Jhotawada river, four miles north-west of the new city The device made to bring water in the city can still be traced out as the entire water route lies buried below the busy market streets of the city

The water reservoirs were public places situated at the two chaupars, (four-sided meet) then popular as the 'Sanganeri-chaupara' and the "Amber ki chaupara" Unlike what they look like today, formerly they were in the form of reservoirs (Kunda) with steps leading to the surface of water Later on, when more water taps were installed during the reign of Sawai Ramsingh in different localities of the city these reservoirs lost their importance and were used for the "tenth day bath" after burning the dead On this particular day, the relatives of the dead, before a bath, had to entrust their heads to the barber, whose function it was to remove all their hairs, and give the top a coconut-like apperance These barbers used to sit under the 'baḍa tree still standing in the four corners of these chaupars In memory of their past headquarters a few foot-path barbers are still seen sitting under these shady trees During the times of Sawai Madho Singh II these water-reservoirs were converted and given the present decorum

---

(३) 'घाऐ निजूमी जोतिगी, पहुरचौं फिरगी कौतिगी' ।
तिन रच्यो जंत्र बिसाल है, तामै ग्रहौं की चाल है ॥१०४॥

So great was Jai Singh's enthusiasim with which he pursued his study of astronomy that he sent envoys to Europe to ascertain what progress they had made in the science of the Heavenly bodies "Feringi", has been used here for Father Padre Manuel de Figueirodo,

who was relieved from the Mogor mission at Agra, to help Jai Singh in his work This was in 1730 The father went to Europe, to bring books and astronomical instruments His friend Pedro-de-silva Leitao, who had come from Goa settled in Jaipur where he died about 1792 A D Silva's grandson was a physician of repute known as Hakim Mārtin* He became an influential courtier, but his family did not survive long

For an exhaustive study of the subject, we have nothing to equal G R Kaye's "A Guide to the Observatories at Delhi, Jaipur, Ujjain, Benares," published from Calcutta in the year 1920

---

(४)

तहँ रहैं कारषाने छतीस ॥१५१॥
यह हुतो कारषाने त नौंस,
पारसी नाम ता मद्धि दोस ।
नृप काढि हिंदवी नाम कोन,
गृह संग्या यह ठानी नवीन ॥१५२॥

The Mughals had a smooth system of running the administration through various departments each designated a "Karkhana" Borrowed from Persia, in the words of Huart†, the Karkhana system had come to stay in Hindustan with the rule of the Mughals, although even before, during the pre-Mughal period of Muslim governments in India the system was in knowledge‡ Basically, these departments dealt with the management of the royal paraphernalia The Karkhana system soon became model for practically the whole of Hindustan, leaving the Rajput States no exception to it, particularly Jaipur of the Kachawāhās who had very close relations with the affairs at Delhi and Agra

The author has mentioned thirty-six Karkhana's which were essentially the same as mentioned by Abul Fazal in his Āin But, as the work shows, it was Jai Singh who brought a change by giving Hindi names to the hitherto existing Persian names for these departments The author then proceeds to describe the new-names and abruptly

---

†*Read Clement Huart's "Ancient Persia and Iranian Civilization"*

‡*Read Afif's "Tārikh-i-Firujshāhī"*

**The descendants of Hakim Martin are still living in Jaipur They enjoyed a big Jagir of village 'Banar', a Rly Stn in the west of Jaipur known as 'Nindar-Banar on the Jaipur-Jhunjhunu line*

finishes the subject supplying four names only i e "Gaja-Graha", "Aśwa-Śālā", "Ratan-Graha" and the "Dhan-Bhandāra" The link ahead is not possible from the work itself, but other unpublished sources including the Jaipur records preserved in the State Archives of Bikaner, throw further light on the subject, although in some cases they may cause modifications when the Archival papers have been carefully studied and properly assessed

In the State Archives of Rajasthan at Bikaner, we have many bundles of documents giving all the details of the various Karkhanas, namely,

(1) Kirkari-Khana	(It dealt with the private treasury of the Jaipur rulers Later on it merged into the 'Kapaḍ-dwārā')
(2) Butāyat	Dealing with the maintenance of orderlies and conveyance
(3) Kośa-Graha	(Part of the Kirkari-khana)
(4) Tośā-Khana	(Store-room of ornaments, precious-stones, robes etc of the rulers and their house-hold members).
(5) Zeen-Khana	(Department dealing with the saddlery of horses, robes etc of the rulers and their house-hold members),
(6) Ratan-Graha	(Store-room of precious stones, such as pearls, rubies etc)
(7) Kothi-Hazuri	(Later on called as Modī-Khana)
(8) Khazana	(Royal treasures)
(9) Feel-Khana	(Department dealing with the maintenance of elephants of the State)
(10) Top-Khana	Deptt of arms and ammunition
(11) Baraat	Deptt for making arrangements for the Royal processions
(12) Sileh-Khana	(Dealing with the maintenance of armoury, namely swords, shields, spears, barchi's, kaṭāra's etc,)
(13) Khusbū-Khana	(Preparation of the perfumeries for the use of rulers and their family members)
(14) Okhad-Khana	(Preparation and supply of medicines to the rulers and their family members)
(15) Gaoo-Khana	(Maintenance of cows and supply of milk)
(16) Tambol-Khana	(Betles for the rulers and their household members)

(17) Rasoi-Khana	(Kitchen and its arrangements)
(18) Patar-Khana	(This department employed the dancing girls at the time of Darbars and other royal functions).
(19) Farrasa-Khana	(Maintenance of the entire camp equippage of the rulers)
(20) Rang-Khana	(Preparation of colours of all kinds).
(21) Surat-Khana	(The drawing of pictures and portraits was the main function of this department)
(22) Khyal-Khana	(Associated with the preparation of fire-works and their display on important festivals and functions)
(23) Shutar-Khana	(Maintenance of camels and their supply was the main function of this department)
(24) Seewan-Graha	(This section dealt with the sewing of the royal robes for the rulers and their household members
(25) Ghoda-Nikas (Nakkhas)	(This section collected taxes on the import and export of horses in the state)
(26) Dag-Ghoda	(The branding of horses, maintained by the jagirdars was, the main function of this deparment)
(27) Mewa-Khana	(This department dealt with the supply of dry fruits for the use of the rulers and their household members)
(28) Chhapa-Khana	(Dyeing and designing of the clothes), later on the name was given to State Press
(29) Agra Jantra Graha	(This section supplied articles required for performing yagña)
(30) Masala-Khana	(Department to make arrangements for lights, chiefly the Masāl's used at the time of the marches of the army)
(31) Imarat	(Construction and maintenance of the buildings belonging to the state)
(32) Gumyana-Khana	(This department made necessary arrangements for musical performances by the singers)
(33) Rosana-Baqi	(The daily accounts of Kothiyar Huzuri, showing the amount of balance receipt, and expenditure of various Karkhanas e g Sileh Khana, Topkhana etc were maintained by this deptt)

(34) *Pothī-Khana*	Royal Library
(35) *Palkī-Khana*	Palanquins Deptt
(36) *Karkhana Punya*	Incharge of the ecclesiastical rites performed by the king

Except 3, 6, 14, 15, 17, 24, 29, 34, 36, none of these above mentioned Karkhanas seem to represent the new-form as referred to in the BV

We now come to another manuscript† which is a hand-book of different topics begining with a topographical account of India under the Mughal map Though undated, it belongs to the 18th C, and has been discovered from Jaipur One Dalpatinarayan is the author, who has disclosed his name on page 23rd of the manuscript From page 17 to 26 there is a separate section on the titles and duties of the State-officials and the names of the 37 Karkhanas While quoting the Karkhanas he has given a comparative chart of the Persian and Hindi names of the departments Possibly, the necessity for supplying such a comparative chart might have arisen to facilitate indentification of the new-names quoted against their previous 'Sambhodan' This work contains the following chart of the Karkhanas

शय्यागार	सुखसेजषाना	कुप्पशाला	रिकाबषाना
मज्जनागार	गुसल्लषाना, हम्माम	फाश्यागार	ठठेरंषाना
देवायतन	तसबीहषाना	महानस	बबरचीषाना रसोडा
पुस्तकालय	किताबषाना	जलगृह	आबदारषाना, पाणेरा
चित्रागार	तसवीरषाना	तांबूलगृह	तबोलषाना
भैषज्यागार	दवाईषाना	प्रतिश्रय	बिलगोरषाना, लंगर
फलागार	मेवाषाना	क्रयशाला	इबतियाषाना
कोष्टागार	जषीरा, अवार	सीवनागार	किरकिराषाना
	कोठार	नेपथ्यागार	तोशकषाना, कपडदारा
महोषधीशाला	मोदीषाना		
सुगधाकार	षुशबोईषाना	यानशाला	रथषाना
	सौंधाषाना		
वर्णागार	रगषाना	पालक्यागार	पालकीषाना
कलादागार	जरगरषाना	दारुकर्मालय	षातिमबदषाना
रत्नागार	जवाहिरषाना	दीपिकागार	शमै, चिरागषाना
प्रहरणकोश	कोरषाना, सिलहषाना	लेखशाला	दफतरषाना
सस्तरागार	फराशषाना	मृगयागार	शिकारषाना

†*Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur Ms No 17727*

श्रीगृह	खजाना, भंडार	शाकुनिकालय	कोशखाना
दानकोश	विहला		
मठरा	अस्तबल तबेला		
चतुर	फीलखाना		
सदानिनी	गावखाना		
उष्ट्रशला	शुतरखाना		

As already hinted above, a complete list of the names of these departments maintained with a changed nomenclature during the time of Jai Singh can only be prepared when Archival documents have been studied However, the manuscript used above covers much of the information sought after The novelties introduced by Jai Singh in the field of administration requires a further explanation from historians who find in it a weakening of the Imperial prestige following the death of Aurangzeb

---

(५)

नृप कीन्हें असमेदादि जग्य,
बहु दान दिये लखि द्विज गुणग्य।
यह जस फैल्यो चहु दिसि मझार,
सुनि विप्रादिक आये अपार ॥१६४॥
तिनु ब्रह्मपुरी में दै बसाय,
धन धान्य ठौर दिय अधिक राय।
.... ,
.... ॥१६५॥

p 26 1 (1-6)

These lines at once suggest the gradual revival of the ancient Hindu traditions so forcefully put to action by Sawai Jai Singh Considering the times, Jai Singh lived in, it was a bold attempt on his part to set aside the general conduct expected of a vassal of the Mughal Empire. How, and in what speed things took a turn is beyond our purview but it goes partially established that Jai Singh rose high having gained a marked ascendancy over the Imperial dictates 'Ashwamedh', had long ceased to be performed, but it appeared again under his attempts D C Sircar† on the grounds that being a subordinate to the Mughal Emperor, Jai Singh could not have performed such a sacrifice Evidence contemporay, as also slightly

†'Sawai Jayasingh of Amber'—*Indian Culture, vol III, no 2, pp 376-379.*

The portion that deals with Jai Singh's march against Jodhpur, is merely part of an annexure to a 'gutka' The first two works of this 'gutka' are dated V S 1726 (A D 1669), but the one in question carries neither date nor the name of the scribe But, the script and the mode of writing put it close to the event The whole of it has been reproduced below, and incidentally the present description is more elaborate than what Ojha and others have given in their histories

According to this manuscript the event took place in V S 1797 (A D 1740) Jai Singh took fifteen days to reach Jodhpur and halted near Mandor Abhay Singh refused to come in the open and agreed to purchase peace on conditions laid pown by Jai Singh i e war expenses and other levies There is also a mention of the participants and the numerical strength behind them who had joined both Abhay Singh and Jai Singh Abhay Singh though well set to risk a battle had prefered to surrender ultimately with the result that the Rathors felt highly humiliated The Emperor had taken the side of Jaipur

॥ श्री रामजी ॥

सबत १७९७ का मीतो सावण बदी ८ नो श्री माहराजा सवाइ जैसघजी जोधपुर घुपर† चढा राजा अभैसंघ‡ री हुकम पातसाह महमुदसाह का थे चढा सो रोज पदरा* मं १५ जोधपुर जाइ लागा अरफ मडावर की डेरा जाइ कीया मुकाम १ ... . अभैसजी†† स्यो राड‡‡ करवा सारी जमीत सेती राडी करबा नै असवार फोज चढ गया तब त बीसटालो हुवो सो इ भात ठाहरी ।

राज जमीती** खरच वुग्य+—

पातसाहजी का		बषतसघ भाई नें अभैसघ कनो मेरतो दीहनु
रोकडी	हाथी	गाव
१००००),	३	१४००
जोहार का		श्री माहराज लीया
२५०००)		रोकतो अर मारोठ

---

†ऊपर ।

‡अभयसिंह ।

*पन्द्रह ।

††अभयसिहजी ।

‡‡युद्ध ।

**जमीयत ।

+वगैरह ।

कीसोरसघ भाइ नै जालोर को प्रडगनु दीनु	२००००००)	१
गाव	भरुदो	इनसो
४००	१	१
	प्र० अजमेर का प्रगना	
	-१०	

इ भात ठहराइ तदी कूच कीयो ।

राडी कोइ हुइ नही मी० भादवा सुदी १ बुधवार उलटा आया जति ऐती लारछी असवार ५०००००

रुपनगर को राजा		सुरजमल जाट		राजा बषतसंघ नागोर क०	
असवार:	पाला†	असवार	पाला	असवार.	पाला
२०००	१०००	५०००	८०००	५०००	३०००

सोसघ राठोड‡		उमेदसंघ साहपुरा वालो	
असवार	पाला	असवार	पाला
१०००	१०००	४०००	३०००
असवार	पाला		
५०००००	५३००००००		
करोली को गोपालसघ राजा		बीकानेर को राजा जोरावरसंघ	
असवार	पाला	असवार	पाल
१०००	५००	४०००	२०००
		• ••• ••••• •• ?	
सादो सेखावत		मीणाइ का	
असवार	पाला	असवार	पाल
३०००	१०००	१०००	१०००
राणाजी की जमीन		घरु माहराजा श्री सावाइजी क जमत	
असवार	पाला	असवार	पाल
३०००	३०००	२ ०००	२५०००
हाथी:	उट जुजालक*	बाणा का वुट††	
१००	५०००	५००	

---

†शिवसिंह ।

‡पैदल Also पाल ।

*बीकानेर मे ऊँट को जाजलिया कहते है, विशेषतः वह ऊँट जिसमे जजुरबे (मोटी ताल की बन्दूकें लगी होती हैं) यह बन्दूकें फौज की रवानगी का सूचन करती हैं ।

††जजुरबे वाले ऊँट ।

नगदी का असवार ५०००
तोपखाना की सुमार† नहीं‡

बुंदी का राज दलेलसघ की लार*

असवार	पाला
३०००	२०००

नोकोट मारवाड

मडोवर.	अजमेर को	पुगल
१	१	१
जैसलमेर	पारकरगढ	अमीसुरो
१	१	१
जालोर	बीकानेर	इद्ररगढ
१	१	१

अर अभैसघ की लार फौज इतनी छी सो लडो कोइ नही सवाइजी को पते हुइ असवार १५००० हाथी १५ पयादा†† १५००० 'राठोड मोत बुरा दीघ'‡‡

---

†गणना।
‡नहीं।
*पीछे।
††पैदल।
‡‡*The Rathors felt highly humiliated*

॥ श्रीः ॥

बखतराम साह कृत

बुद्धि-विलास

'ॐ नम सिद्धचेभ्य नमः'[1] अथ बुद्धि-विलास[2] नांम ग्रंथ लिष्यते ॥

छप्पै : समद-विजय[3] सुत जिन सु, नमत अघ हरत सकल जग।
कुमर-पद हि तप-षड़ग[4], लियव कर हनिय करम-ठग ॥
भरम-तिमर सव[5] नसन, उदय हुव तिभवन दिनकर।
जपि भवि[6] भवदधि तरत, लहत गति परम मुकतिवर[7] ॥
तसु चरन-कमल भविजन[8] भमर, लषि लषि अनुभव रस चषत।
वह करहु नजरि मुझ परि सु जिम, सुफल फलहि हम कहि वषत[9] ॥१॥
आदीस्वर तैं महावीर जिन लौं तीर्थंकर।
सकल भये चौवीस, वहुरि तिनंही के गनधर ॥
वृषभसेन[1] दै आदि अंत गोतम लौं नामो।
चौदहसै त्रेपन जु भये[2] तदभव सिवगांमी ॥
फुनि अरहत[3] सिध आचार्य अरु, उपाध्याय सव साधुवर।
है, हौंहि, ह्वै गऐ, तिनु नमैं, वषतराम जुग जोरि कर ॥२॥

दोहा[1] : महा विदेहनि बीस जिन, सास्वत रहे विराज।
तिनहि नमत सुष संपजै, जात सकल अघ भाजि ॥३॥
वंदौं वांनी सरस्वती, मन वच तन सिर नाय।
जाकी क्रपा कटाछि तैं, बुद्धि वढै सुषदाय ॥४॥

छंद पद्धरी : श्री गुर-प्रसाद लहि वुधि विकास,
रचिहौं, व गृथ यह वुधि विलास।
तामैं वरनन लषि सकल सार,
भविजन पावैगे सुष अपार ॥५॥

---

१ : B opens with '१ ॥दं०॥ ॐ नम सिद्धेभ्य.॥'। २ बुद्धि-विलाश। ३ विजय। ४ षडग। ५ सव। ६ मवि। ७ मुकतिवर। ८ मबिजन। ९ बषत।
२ : १ वृषमसेन। २ मऐ। ३ अरहत।
३ : १ दोहा।

जो हैं तिहुँ लोकनिकौ प्रमांन,
सो प्रथम वरन करियत सुजांन।
प्राचीन ग्रंथ अनुसार पाय,
स्वरवांनीकी भाषा बनाय ॥६॥

दोहा प्रथम भूमि मधि लोककी, चित्रा नांम कहात।
तातैं जोजन लक्ष यक, ऊँचे स्वर्ग[1] विष्यात ॥७॥
मद्धि जोतिषी-पटल मैं, अथिरनुकौ यह हेत।
मेर सुदरसन आदिकी, नित्ति प्रदषिणा[1] देत ॥८॥

स्वर्ग नामां

कवित्त : सउधर्म ईसांन औ सनतकुमार जांनि,
बहुरि महिंद्र वृह्म ब्रंह्मोतर जानिऐ।
लांतव‡ कापिष्ट शुक्र महाशुक्र है सतारि,
सहैश्रारि आंणत प्रांणत पैहचानिऐ॥
आरण अच्युत भऐ सोलह सुरग तिन,
ऊपरि है नौ ग्रीवेक तिन्हैं उर आंनिऐ।
तापैं नौ निड़ोतरे[1] कैं परि पांच पित्योतरे[2],
तिन परि 'मुक्ति-सिला सिद्ध'[3] ठौर मांनिऐ ॥९॥

दोहा : वाही चित्रा भूमि कैं, तलि भुवनालय जांनि।
जोजन लक्ष प्रमांण फुनि, तलै नरक दुष-दानि ॥१०॥

नरक प्रभा नांम[1]

रत्न सर्करा वालुका, पक धूम तम सोदि।
बहुरि[2] महातम सात ऐ[3], तिन तलि कही निगोदि ॥११॥

---

७ : १ स्वर्ग।
८ : १ प्रदिषणां।
९ १ निडोतरे। २ पिचौतरे। ३ सिद्ध मुकति सला।
११ : १नाम। २ बहुरि। ३ सातए।

---

†According to the Svetambara's there are twelves "Swarga's" only, whereas the Digambara's stick to sixteen i. e. ब्रह्मोत्तर, कापिष्ठ, शुक्र, शतार *in addition.*

‡Is it Atlantic ?

या विधि ए सछेप से, वरनें सकल सथांन ।।
अब[1] इनकौ सुनिये[2] सकल, घनाकार मतिवांन ।।१२।।

चौपई प्रथम अनत अलोकाकास, दसौं दिसा मरजाद न जास ।
तामैं लोक पुरष आकार, चौदह राजू ऊँचौ सार ।।१३।।
ज्यौं कटि पुरष हाथ धरि दोय, पग चौड़े[1] करि ऊभो[2] होय ।
इम अलोक मै लोक कहंत, ज्यौं घर मै छींका लटकत ।।१४।।
घनाकार तिन कौ सुनि लेहु, विधिवत ज्यौं भाजै सदेहु ।
रजू तीन सै तेतालोस, होत जु भाष्यौ जिम जगदीस ।।१५।।

दोहा : प्रथम हि भूमि निगोदि-तलि, लांवी चौड़ी जांनि ।
सात सात राजू कहो, फुनि सुनिए गुनषांनि ।।१६।।
ऊची राजू सात है, मद्धि लोक लौं सोय ।
जेम अन्न की रासि फुनि, अर्ध[1] तरौं नां होय ।।१७।।
मद्धि लोक भुव नांम जो, चित्रा कह्यौ विष्यात ।
पूरब पछिम ऐक रजु, दक्षिण उत्तर सात ।।१८।।
तामैं राजू ऐक तौ, चित्राकौ लै ताहि ।
तैली राजू सात भुव, चौड़ी मांहि मिलाहि ।।१९।।
भई आठ राजू सवै, तिह आधी लै च्यारि[1] ।
ताकौं लंवी सात सौं, गुनि लीजिऐ विचारि ।।२०।।

सोरठा : होत गुनै अठवीस, सो गुनि ऊची सात तै ।
घनाकार जु भईस[1], रजू ऐकसौंछिनवै[2] ।।२१।।

दोहा[1] : फुनि वा चित्रा भूमि तै, ऊंची राजू सात ।
वात-वलय लौं जांनि तसु, भाग दोय गिनि भ्रात ।।२२।।
वृंह्म[1] स्वर्ग लौं भाग यक, पहिलै घटि फुनि वाधि[2] ।
वात-वलय लौं दूसरो[3], वधि घटि लीजे साधि ।।२३।।

---

१२ : १ अब । २ सुनिए ।
१४ : १ चौडे । २ ऊभौ ।
१७ : १ अर्द्ध ।
२० : १ च्यरि ।
२१ : १ भईसु । २ छिनवै ।
२२ : १ दोहा A does not use दोहा at all ।
२३ : १ ब्रह्म । २ वधि । ३ दूसरौ ।

अरिल[1] : मद्धि लोक चौड़ौ इक[2] राजू सांच है,
ब्रह्म स्वर्ग वह चौडौ राजू पांच है ॥
मिलें होत छह तामें आधे लीजिऐ[3],
तिनकौ लंबे सात गुनें[4] जब कीजिऐ[5] ॥२४॥
तबै होत इकईस सबै सुनि मित जू,
ब्रंह्म स्वर्ग लौं ऊचौ गनौं[1] नचित जू ।
राजू साढे तीन ताहि इकईस तें,
गुनि लीजे जैसें विधि सुनी मुनीस तें ॥२५॥
होत जु सत्तरि ऊपरि साढे तीन हैं,
ऐसें ही वृम्होतर तें गिनि लीन हैं ।
जो वधिघटि[1] कहि आयो[2] सो घटिवधि[3] गिनौं,
राजू होय तिहैत्रि[4] साढे सो भनौं ॥२६॥
दोऊ लेहु मिलाय करो[1] इकठे सबै,
होय ऐक[2]सौसैतालीस रजू जबै ।
तिन्हैं ऐकसौछिनवें मांझि मिलाइऐ,
रजू तीनसैतेतालीस बताइऐ ॥२७॥
तामैं जीव अनंत भरे यम मांनिऐं,
ज्यौं घट भरयौ घिरतसौं त्यौंही जानिऐं ।
जांन-पनौं लषिवो है केवल ग्यांन में,
श्री जिन भाषी सो कीजे सरधां नमैं ॥२८॥
ताही कै मधि त्रसनाड़ी[1] जु कहात है,
ऊची चौदह राजू सबै विभात[2] है ।
लबी चौड़ी इक इक[3] राजू ही कही,
त्रस जीवनि की याही मै उतपति सही ॥२९॥

---

२४ · १ अरिल छद । २ यक । ३ लीजिए । ४ गुनें । ५ कीजिए ।
२५ · १ गिनौ ।
२६ : १ घटिबधि । २ आयौ । ३ Same as १ । ४ तिहत्तरि ।
२७ : १ करौ । २ एक ।
२९ : १ नाडी । २ विख्यात । ३ यक एक ।

या विन लोकाकास मद्धि जे[1] ठौर है,
तहां इकेंद्री ही उपजत नहि और है।
लोकाकास तणी विधि ऐसै जांनिऐं,
गृ थनि कै अनुसारि कही सो मांनिऐं ॥३०॥

चौपई. परि यह लोक जु पुरषाकार, वात-वलय कै है आधार।
तिन के नांम आदि सुनि अवै, तीन वलय तै वेढचौ सवै ॥३१॥
प्रथम घनोदधि पवन कहात, गऊ-मूत्र सम वरन लषात।
मोटो जोजन वीस हजार, सव पिरथीतलि वलयाकार ॥३२॥
दुतिय वलय घन ताकौ नांम, मूग वरन सोहै अभिरांम।
और घनोदधि-सम लै जांनि, त्रितिय वलय तन नांम वषांनि ॥ ३३॥
पंच वरन[1] है ताकौ रंग, और सकल जांनौ वह ढग।
पिंड़[2] भयो[3] सव साठि हजार, वड़ा जोजनां मोटौ सार ॥३४॥
ऊपरि सिद्धषेत्र है जहां, इती मुटाई[1] जांनौ तहां।
वात घनोंदधि फुनि घनवात, चवद्दै सहस धनुष रे भ्रात ॥३५॥
त्रितिय वात तन धनुष प्रमांन, पंद्रहसैंपिच्चेहतरि[1] जांन।
तिनमैं[2] सिद्धन के सिर लगे, इम भाषी गनधर गुन पगे ॥३६॥
अव सुणि मद्धिलोक-विस्तार[1], दीप समुद्र असंषि मुझार[2]।
तिन मधि जंवूदीप प्रधांन, ज्यौं सरीर मधि[3] नाभि प्रमांन ॥३७॥
गोल जानि तिह वलयाकार, चहु दिसि जोजन लक्ष प्रसार।
मेर[1] सुदरसन ताकै मद्धि, ऊचौ[2] जोजन लक्ष प्रसिद्धि ॥३८॥
ताकै दक्षरण उत्तर[1] वीर, षट परवत जु परे मनु तीर।
पूरव पछिम तिनके छोर, लवरणोदधिमैं परे दुवोर ॥३९॥
जिनतैं भऐ सात सुभ षेत, तिनकौ नांम सुनौं करि हेत।
भरतषेत्र[1] दक्षिरण दिसि जांनि, ऐरावत ऊत्तर दिसि मांनि ॥४०॥

---

३० : १ जो।
३४ : १ वरण। २ पिंड। ३ भयौ।
३५ : १ मुटाइ।
३६ : १ पिच्चेहत्तरि। २ तिनतैं।
३७ : १ विसतार। २ मद्धार। ३ विचि।
३८ १ मेरु। २ ऊचो।
३९ : १ उतर।
४० : १ क्षेत्र।

हिमवत कह्यौ चौ गुणौं सोय, है रनि वत तिम उत्तर जोय।
षेत्र जुहरि यातै चौगुणौ, रम्यक उत्तर दिसि फुनि सुणौं ॥४१॥
वीचि विराजै षेत्र विदेह, चौसठि गुणौं ताहि गिणि[1] लेह[2]।
अब परवत के कहिऐ[3] नांम, हिमवन भरथ वोर अभिरांम ॥४२॥
सिषरी ऐरावत दिसि लग्यौ, महा हिमौंन दषिण[1] दिसि पग्यौ।
रुकमी ऊत्तर दिसिकौं होय, नषिध भरथ की वोर सु जोय ॥४३॥
नील उतर दिसि ही कौं जानि, ऐ सब भूधर षेत्र प्रमांन।
तिनके भाग ऐक सौ निवै, तामै भरथ भाग यक हिवै ॥४४॥
जोजन पाच सै रु छव्वीस, इक जोजनकी कला वनीस[1]।
तिनमैं कला लेहु षट कहै, भरथ ऐरावत परमित यहै ॥४५॥
भवि सुनि भरथ षेत्र की वात, विचि विजयारध परयो विष्यात।
तामै गुफा दोय तू जानि, तिनकी तरह सुनौ सुषदांनि ॥४६॥
हिमवन परवत परि द्रह देषि, पदम नांम तिह तनौ विसेषि।
तिह तैं या दिसि नदी दोय, गंगा सिंध[1] नीकसी सोय ॥४७॥
गगा विजियारधकौं भेदि, पूरव दिसि चाली विनि षेदि।
दुतिय गुफा विजियारध मांहि, सिंधु चली पच्छिम दिसि जाहि ॥४८॥
तिनतै भरथ-षेत्रकै माहि, षट षंड़[1] पड़े[2] सु संसय नाहि।
तिनमै षंड़ मलेछ जु पांच, आरज्य[3] षड ऐक है सांच ॥४९॥
ताकै मद्धि जांनि इक देस, नांम ढुढाहर[1] वसै विसेस।
सरिता[2] सरवर तामै घने[3], कूप वावड़ी सुंदर वने ॥५०॥
वृछ[1] अनेक जाति के भले, छहु रति मैं जे फूलै फलैं।
तहा पुरी अवावति वसै, इंद्रपुरी हू तैं अति लसै ॥५१॥

---

४२ १ गिनि। २ लेहु। ३ कहियतु।
४३ : १ दक्षिण।
४५ . १ उनीस।
४७ : १ सिन्धु।
४९ : १ षढे। २ पडे। ३ आरिज।
५० : १ ढुढाहर। २ सरता। ३ घनें।
५१ : १ वृद्धि।

चहु[1] दिसि परवत वड़े ऊतंग[2], तिन परि षाई कोट सुचंग।
मद्धि पुरी कै सुंदर भौंन, तिनमै वसै सुषी सव पौंनि ॥५२॥
गिर परि महल भूप के वड़े, मांनौं सुर[1]-विमांन ऐ[2] षड़े।
महलनतै गिर परि कछु[3] दूरि, किल्ला ऐक वनायो सूरि ॥५३॥
नांम सवाई जैगढ दियौ, भूप सवाई जैस्यंघ कियौ।
तामैं सोहत महल सुवाग, तोप कोट परि है वहु लाग ॥५४॥
राजी सवै पुरी के लोग, भूपनि-तणी नीति-संजोग।
ईति[1] भीति नहि ब्यापत जहां, दुषी न दीसै कोऊ तहां ॥५५॥

छंद वरवै : तहां भऐ कछवाहे, छत्री[1] भूप।
तिनकी कीरति जग मैं, अधिक अनूप ॥५६॥

नृप वंस वर्नन

दोहा : वड़े वंस श्रीरांम के, कछवाहे दल साजि।
आऐ नरवर तैं कियौ, देस ढुढाहड़ राज ॥५७॥
प्रथम राज काकिल कियौ, मारि मवासे तोड़ि।
वचे भोमिया ते सवै, मिले आप कर जोड़ि ॥५८॥
तिनकै पाटि हणू नृपति, भऐ मनौं हनुमांन।
वहुरचौं जानड़दे भऐ, तिनकै पाटि सु जांन ॥५९॥
फुनि पज्जवण भऐ नृपति, महावली सांमंत।
तिनकौ वल जस प्राकरम, वहु कविजन वरनंत ॥६०॥

सोरठा : भऐ मलेसी भूप, ग्यारह सै इक्यांवनै[1]।
कीन्हौ राज अनूप, वैठि पुरी अंवावती ॥६१॥
फुनि वीसल भूपाल, राज कियौ वहु[1] सैन सजि।
तिनकै पाटि विसाल, राजे राजा राजदे ॥६२॥

---

५२ : १ चहुं। २ उतंग।
५३ : १ स्वर। २ ए। ३ कछू।
५५ : १ इति।
५६ : १ षित्री।
५९ : १ हणूं।
६१ : १ only इ the rest damaged.
६२ : १ ends damaged the word thus lost

फुनि नृप केल्हण नांम, वहुरचौं कूतिल[1] नृप भऐ[2]।
तिनके गढ़ अभिराम, अवलौं सोभित हैं[3] प्रगट ॥६३॥
फुनि जौंणसी महीप, तिनकै पाटि भऐ नृपति।
उदैकरण अवनीप, तिनकै पटि[1] नरस्यंघ हुव ॥६४॥
भऐ भूप वणवीर, तिनकै[1] पट[2] उधरण उऐ[3]।
तिनकै पटि धरधीर, चंद्रसेरिग हुव चद्रसम ॥६५॥
तिनकै पटि भूपाल, प्रथ्वीराज[1] उद्योत किय।
सव दुरजन के साल, भऐ प्रजापालन निमति ॥६६॥
द्वारावति की छाप, म्हाधरम[1] ध्वज भूप कै।
जोगी-तणै मिलाप, घर वैठां ही ऊ घडी ॥६७॥
तिनकै वारह पुत्र, भऐ महावल प्राक्रमी।
जीति लऐ[1] सहु सत्रु, वांधी वारह कोटडी ॥६८॥

छंद प्रथीराज कै पाटि भारमल वैठ्यौ[1] अति सोहै।
तिनकै पटि भगवंतदास हुव ता सम और न को है॥
जिनकै[2] पुत्र भऐ जग मैं नृप मानस्यंघ अवतारी।
तिन दिल्लीपति पातसाहिकी[3] सवही वात सुधारी ॥६९॥
पूरव पछिम दक्षिण[1] ऊतर[2] च्यारचौं दिसि पजाई[3]।
लैं लैं जीति भूमि भूपनि की दिल्ली तलै लगाई॥
सवही मुलक माहि जिनकौ जस अवलौं[4] नर तिय गावैं।
तिनकी सपति साहैं[5] सुभटनु[6] कौ जसु कछुक सुनावैं ॥७०॥

---

६३ १ कूतिल। २ भये। ३ है।
६४ १ पाटि।
६५ १ जिनकै। २ पटि। ३ भए।
६६ १ प्रथीराज।
६७ १ महाधर्म्मं।
६८ १लिये, B includes two additional Dohas and the verse order changes accordingly

दोहा—प्रथीराज नृप जांम, पूरणमल भोवौं रतन।
किियो राज परिनाम, कारणी कविन ना धरचौं ॥६९॥
आसकरण इक पुत्र, दौरि जाय पतिसाहिपैं।
नलवर राज पवित्र, लैकैं कीयौ जीति षलु ॥७०॥

६९ १ बैठो। २ जिन्हकै। ३पातिसाहि।
७० १ दक्षिन। २ उत्तर। ३ पं जाई। ४ अब लौं। ५ सांहंस। ६ सुभटन।

कवित्त अन्योक्त[1]† : जेतक[2] विलायत मैं ऐक[3] उमराव[4] ताकैं,
तेती बीचि पांडवन मांड्यौ कुरषेत है।
कहै 'कवि गंगधर' आंगन कौ जैसौ लेषौ,
तैसै कीन्हें सात हैं समुद्र सरासेत है॥
ऐती भूमि काकै भई कौंनें पातसाहि लई,
जेती यह पातसाहि[5] लई अर लेत है।
मेरै जांनि राजा मांन तोरि तोरि आसमान,
जोरि जोरि जमीतैं जलालदी कौं देत है॥७१॥

पुन कवित्त : काहू कै करम पातसाही उमराई राई,
काहू कै करम राज-राजनिकौ नेत है।
काहू कै करम हय हाथी परगनें पुर,
काहू कै करम हेम हीरनि कौ केत है॥
हरि हरि[1] जोई जोई जाही कै लिलाट लीक,
सोई सोई आंनि इँह दरबारि[2] लेत है।
कूरम नरिंद मांनस्यंघ महाराजा,
तेरे करकै भरोसै करतार[3] लिषि देत है॥७२॥
पीछै तौं न होयगौ[1] जुगति यह जांनियत,
कीन्हौं जब सेत रांम हेत जाकौ नल है।
कूरम नरिंद पुरषारथ की सीम सुनैं,
जाके भुजदंडनि मै भीमको[2] सौ बल[3] है॥
पूरब की वोर छित छोर लौं विरचि वीर,
काटि काढ्यौ अमित पठाननि कौ दल है।
लोहू भरचो षरग[4] पषारचौ मांनस्यंघ, भयौ
तब तै सुषारौ मनौं[5] सागर कौ जल है॥७३॥

---

७१ : १ अन्योक्ति। २ जेतिक। ३ एक। ४ उमराय। ५ अकबर।
७२ : १ हर। २ दरबार। ३ करतारु।
७३ : १ होयगो। २ भीमको सौ। ३ बल। ४ षडग। ५ मानों।

---

†The author means that this couplet has been composed by some one else The word has nothing to do with अन्योक्ति alankara.

छप्पै : कनक-कलस सज्जिऐ[1], नगर मंडिऐ[2] विविधि विधि।
पदमिनि यम पिष्यिऐ[3], उदित भई मनहुँ- नऊं निधि॥
नर नारी मन मुदित, हरषि मुष मंगल गांवहि।
जिनु थप्यो लंकेस कहै, सोई दछिछन आवहि[4]॥
इम सिंधु सकुचि पैंडो[5] कियौ, जो न सीस पथ्थर[6] तिरै।
रघुवंस अंस नृप मांन सुनि, भम्भीषन फूल्यौ[7] फिरै[8]॥७४॥

सोरठा : तेग मांन की मांहि, अगनि[1] अनीषी नीकलै।
त्रण[2] वाला† वचि जांहि, जलवाळा‡ जलि जलि मरै॥७५॥

दोहा[1] : मांनस्यघ नृप कै भऍ[2], जगतस्यघ* सुकमार।
वालपनै गढ कांगड़ा[3], तोडत[4] लगी न वार॥७६॥
कवि काला माठा[1] तुरी, रज विन[2] रजपूतांह।
जगतै मान नरिंद-रै[3], आघ[4] कियौ ऐतांह॥७७॥
भऐ[1] कवर जगतेस कै, महास्यंघ सिरताज।
लघु सुत सूपति मान[2] कौ[3], भावस्यंघ किय राज॥७८॥
बहुरि भऐ महास्यंघ कै, सुत नृप जयस्यंघ नांम।
दक्षिण दिसि जीतन[1] चढे, मनहु[2] लंककौं रांम॥७९॥

छप्पै : तिन तिलंग हुव भस्म असम[1] अफजल वर फट्टिव।
लग्ग वग्ग वंगलांन नद द्रावड़ी दवट्टिव[2]॥
मृग महीप घन घूमि घूम[3] घर[4] मड़ल मछिछव[5]।
घिरत षांन षुंम्मांन कोन लक्कर जिम डट्टिव[6]॥

---

७४ १ सज्जिए। २ मडिए। ३ पिष्षिए। ४ आवहि। ५ पंडो। ६ पत्थर।
७ फुल्लयौ। ८ फिरै।
७५ १ आगि। २ त्रिण।
७६ १ दोहा। २ भए। ३ कागरा। ४ तोडत।
७७ : १ माठा। २ विनि। ३ कै। ४ आघ।
७८ १ भए। २ मान। ३ कै।
७९ : १ जीतण। २ मनौं।
८० : १ missing। २ A दवट्टिप। ३ घूम। ४ घुर। ५ महिव। ६ डट्टिव।

---

†The defeated foes holding grass in the mouth.

‡The envious.

*The famous temple of 'Jagat-Shiromani' at Amber is assigned to Prince Jagat Singh who died during the life-time of his father.

सिव सिंघ[७] अग्य जग्गी अवनि, यम जगत्त जारन लयव।
वल दलति[८] जलद जयसाहि-दल, नहि पिष्षिय कब बुझि[९] गयव ॥८०॥

कवित्त अन्यौक्ति[१] : फौजन[२] तै आपन दवाय राषी दसौं दिसि,
अरनिकौं राषी न निसांनी कहूं हिरकी।
साहि के सुभट जयस्यंघ गिर मेर गुर,
गाहि गाहि गाही ठौर राषी न गुमर की॥
कीनौं वोल ऊपर प्रताप दीन हू पर, सु—
भूप तै पाघ राषी भूपनि के सिर की।
थर थर थार को[३] सौ पारौ थहरात[४] ही†,
सु तेही लगि थांभ पातसाही[५] थांभि थिर की ॥८१॥

दोहा : भऐ[१] भूप जयस्यंघ कै, रांमस्यघ महाराज।
तिनके[२] संगि सदा रहे, कविजन‡ सुभट समाज ॥८२॥

प्रताप वर्नन

कवित्त : किलकत काली जुग्गननि कै[१] जसन होत,
'सुकवि धुरंधर' जमाति जुरै देवी की।
और हूं कहां लौं कहौं दौर[२] रांम कूरम की,
दविगे दिगज देव-दांनव न ऐवी[३] की॥
धसकी धरनि ड़ाढ मसकी ड़ढायर की[४],
कसकी कमठ-पीठि[५] रसम रकेवी* की।
दिग्ग-दल भारकै दवाऐं वे-सम्हार ह्वै कै,
भयौ भांति सिमटि भुजगम जलेवी की ॥८३॥

दौहा[१] : भऐ[२] रांम नृप कै कवर, किसनस्यंघ जिम भांन।
तिनके तेज कृपान[३] कौं, जानत सकल जिहांन ॥८४॥

---

८० : ७ स्यंघ। ८ Aदलिति। ९ Aकव वुज्झि।
८१ : अन्यौक्ति। २ फोजन। ३ कौं। ४ थैहरात। ५ पातिसाही।
८२ : १ भए। २ तिनकै।
८३ : १ कै। २ दोर। ३ एवी। ४ डठायरकी। ५ पीठि।
८४ : १ दौहा does not occur in A। २ भए। ३ कृपान।

---

†cf Bhusan 'थारा पर पारा पारावार यों हलत है' (Shiva-Bavani)
‡Kulapati Misra was a Court-poet of Ram Singh
*The convex back of the mythological crab became concave like a dish,

कवरपदै किसनेस कै, विसनस्यंघ हुव पुत्र।
राज कियौ अवावती, जीति सकल षल सत्रु ॥८५॥

छप्पै अन्योक्त[१] : जिन जट्टन अल्ली हुसेन भल्ली विधि कुट्टिव।
जिन जट्टन सफीषांन नद वहु भात[२] अहुट्टिव ॥
जिन जट्टन मैंहरावषांन-गुंमांन[३] गुमायौ[४]।
जिन जट्टन मुकरब्बिषांन कर कुट्टि[५] षिलायौ ॥
'कवि राम' वहादरषांन सौं, जंग जुट्टि वसु लुट्टि लिय[६]।
नृप विसनस्यघ सोइ[७] तेग वर, जट्ट थट्ट दहवट्ट[८] लिय ॥८६॥

दोहा[१] : विसनस्यघ नृपकै भऐ[२], श्री जयस्यंघ नरिंद।
तिनहि सवाई पद दयौ, दिल्ली सुरपति हिंद ॥८७॥
संगि लिऐ[१] चतुरंग दल, रथ पायक गज वाजि।
कूरम श्री जयस्यघ नृप, चढे गढौं पै साजि ॥८८॥

छंद भुजंग प्रयात : गढौं पै चढे भूप वालापनै[१] मैं,
दिसा दक्षिणी परवतौं के गनै[२] मैं।
किला तोरि कै षेलना[३] षेलना† से,
मनौं वालकौं नै[४] किऐ[५] हैं तमासे ॥८९॥
लरे सैद वे दौरिकैं सांभरी मैं,
मिलाये[१] जमौं सैं तिनेंहू घरी मैं।
भिरे साहिजावे भयो जंग भारी,
तहां भूपहू कोपि कीन्हीं[२] सवारी ॥९०॥

---

८६ . १ अन्योक्ति। २ भाति। ३ गुम्मांन। ४ गमायौ। ५ कुट्ट। ६ ^किय।
७ सोई। ८ दैह वट्ट।
८७ १ दौहा। २ भए।
८८ १ लियें।
८९ १ वालापनें। २ गनें। ३ षेलना। ४ नैं। ५ किये।
९० १ मिलाए। २ कींनी।

---

†Fort of Khelana or Vishalgarh on the crest of the Sahyadri hills in the Deccan. It is said that the title "Sawai" was conferred upon Jai Singh, when hardly sixteen, by the Emperor Aurangzeb in recognition of his personal qualities shown by him during the Khelana campaign (A.D 1702)

चलाऐ घने वांन[1] आकास छाऐ,
तमासे[2] घनें जोगिनी जक्ष आऐ।
कियो जुद्ध भारी घने[3] सत्रु मारे,
वचे जे तिनौंनै[4] तिने दत धारे ॥९१॥
वड़े भूप भू मैं हुते मारवारी,
तिन्हौं पै चढी कोपि कै फौज सारी।
लगे पाय वे छांडिकै[1] राजधांनी,
चहूं चक्क नै भूप की आंन मांनी ॥९२॥

दोहा[1] : मांनी आंन सवै नृपति, आऐ अधिक उमंगि।
पाय लागि विनती करी, हमैं राषिऐ संगि ॥९३॥

वांन वर्नन (अ०[1]) ॥

कवित्त : कूरम नरिंद जयसाहि वाहैं परकै,
सु पार होत पल मै सहज सूकी परकै।
चलत सलूक चुकुटी[2] कै और कर कै,
सुवकतर टोप करी काच जिम[3] करकै ॥
'सूरजि'[4] भनत करै घाव जाही धर-कैं,
सु वाकौ हियौ नैक वेर दोय-तीन धरकै।
मालिम जगत मै लगत जाही[5] सर-कै,
सु हाथी पैड़ पाच सात पाछे पाय सरकै ॥९४॥

कवित्त[1] : कोप करि कूरम सवाई जयस्यंघ नृप,
चढ्यौ जोधपुरवारे अभैस्यंघ मारू[2] परां।
फौजन की गरद न दीसै भांन[3]-मंडलहू,
सिंध[4] सूकि गऐ को गनत नदी नारे सर ॥

---

९१ : १ वाण। २ तमासे। ३ घनें। ४ जे जिन्हौंनै।
९२ : १ छाडिवे।
९३ : १ दौहा।
९४ : १ missing। २ चिकुटी। ३ जिमि। ४ सूरज। ५ जांही।
९५ : १ कवित्त, missing in A। २ मारू। ३ भानु। ४ सिंधु।

---

†cf. Ms no 4287 in the Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur collection.

दसौं दिगपालन हूं दातन[५] तिनौंका[६] धरे,
सुरपुर नागपुर दौरे[७] जात दरवर।
दहसत्ति[८] षाय रजपूतन की वांह[९] छांह[१०],
आय मिलि ड़ांड़[११] भरि वच्यौ नाथ मुरधर ॥९५॥
जंग सुलतानें जहा[१] पूरव परव पाय,
अरव षरव दल जोरे पर दोह पै[२]।
'सूरिज' भनत तहां[३] आगै भयो जयसाहि,
सिंधुर ठिलत यौं[४] पिलत लोह लोह पैं॥
गिद्धि[५] सिधि[६] सथ्थन अघांनौं स्यंभू मथ्थन[७],
सुवीर निज हथ्थन[८] चलावै तीर छोह पै।
मंडल कमांन कै वितुंड पै लसत मनौं,
ऊग्यौ[९] है प्रचंड मारतंड विधु[१०] कोह पै ॥९६॥

नगर उतपति[१] वरनन[२]

दोहा[३] छंद नगर वसायौ यक नयौ, जयस्यंघ सवाई,
निसानी : जाकी सोभा जगत मैं, दसहौं दिसि छाई।
ताकौ वरनन करनकौ, हुलसी मति मेरी,
इंद्रपुरी हू जानियौं, ताकी है चेरी ॥९७॥

कवित्त कूरम सवाई जयस्यंघ भूप सिरोमनि,
सुजस प्रताप जाकौ[१] जगत मैं छायौ[२] है।
करन-सौ दानी पांडवन-सौ कृपांनी महा,
मांनी मरजाद मेर रांम-सौ सुहायौ है॥
सोहै अवावति की दक्षिण[३] दिसि सांगानेरि,
दोऊ वीचि सहर अनौपम[४] वसायो है।
नांम ताकौ धरयौ है स्वाई[५] जयपुर,
मांनौं सुरनि हीं[६] मिलि सुरपुर-सौ रचायो है ॥९८॥[७]

---

९५ : ५ दातन। ६ तिनुका। ७ दोरे। ८ दहसति। ९ वाह। १० छाह। ११ वाड।
९६ : १ तहा। २ [A] दोहैपै। ३ जहां। ४ भयौ। ५ गिधि। ६ सिद्धि।
७ मत्थन। ८ हत्थन। ९ उग्यो। १० विधु।
९७ : १ उत्पत्ति। २ वर्नन। ३ missing।
९८ : १ ताकौ। २ छायौ। ३ दक्षण। ४ अनोपम। ५ सवाई। ६ ही।
७ ॥१००॥।

छंद पद्धरी : च्यारचौं[1] दिसि रच्यौ उतंग कोट,
तापरि कगुरनि[2] की वनी जोट।
तिह तलि चौड़ी षाई वनाय[3],
औड़ी मनु सरिता चली जाय ॥९९॥
दरवाजे ऊचे[1] वनें[2] गोष,
पौरिया वैठि तिह[3] करत जौष।
चौपरि† के कीन्हे हैं वजार,
विचि वीचि वनाऐ[4] चौक चार ॥१००॥
ल्याऐ[1] नहैरि‡ वाजार मांहि,
विचि मैं ववे गहरे रषांहि।
चौकनि मै कुंड रचे गंभीर,
जग पीवत तिनकौं मिष्ट नीर ॥१०१॥
हाटिन कै विचि रस्ता[1] रषाय,
दीन्हे[2], ते सूधे चले जाय।
वहु वने हवैली कूप वाग,
सुंदर तिनु लषि मन लगत लाग ॥१०२॥
धनवांन जु व्यौपारी कितेक,
वहु देस सुदेसनि तै आऐ अनेक[1]।
ते करत विणज अति निसक[2] होय,
परदेस सुदेसहि जात कोय ॥१०३॥
मिलि साहूकार धनाढि मित,
वागनि मैं गोठि करै नींचत।

---

९९ : १ च्यारचौं। २ कंगुरनि। ३ षनाय।
१०० : १ ऊचे। २ वडे। ३ तेंह। ४ वनाए।
१०१ : १ ल्याए।
१०२ : १ रसता। २ दीन्हैं।
१०३ : १ वहु देसनि तै ल्याए अनेक। २ निसँक।

†In accordance with the Hindu tradition of town-planning i, e, two wide streets run through the city intersecting at right angles.

‡This canal was brought from नाला अमानीशाह in the west of the new city—नाथावतों का इतिहास, हनुमान शर्मा p. 166.

या विधि सौं[1] सुष[2] निसि दिन वितात,
देवन[3] समांन नर तिय लसात ॥१०४॥

छंद · आऐ निजूमी† जोतिगी, वहुरचौं फिरगी‡ कौतिगी ।
तिन रच्यौ जंत्र विसाल है, तामैं ग्रहौं[1] की चाल है ॥१०५॥
तिथिपत्र* मिलि ठान्यौं नयौ, सिरिनांम भूपति कौ दयौ ।
सो[1] 'जयविनोद' कहात हैं[2], जग मांहि सौ विष्यात है ॥१०६॥
वहु विप्रि विद्यावांन ते, आऐ दिसा-विदिसान[1] तें ।
साहित्य तर्क सु न्याय के, पाठी प्रवीन सुभाय के ॥१०७॥
मिलि वैठि वै चरचा करैं[1], 'वांनी सुरनि की††' उच्चरैं[2] ।
वोलै सु अधिक मरोर सौं, वहु जोर करि कैं सोर सौं ॥१०८॥
सुनि भूप चरचा तिन-तनी‡‡, हिय हरषि कै कवि गुनी ।
धव देत तिनहि अपार है[1], अैसी अनेक सभा रहै[2] ॥१०९॥
भाषा कवी परवीन ते, जस करत नव प्राचीन ते ।
वारहट** भाट†† सुभावतैं, वहु पढत कवि चित चावतैं ॥११०॥
गज वाजि धन सिरपाव ते, वकसीस लहि गुन गावते ।
विचरैं सु पर हू देसते, आसिषा देत हमेस ते ॥१११॥

---

१०४ : १ सुष । २ सौं । ३ देवनि ।
१०५ : १ गृहौं ।
१०६ १ श्री । २ है ।
१०७ · १ दिसांनि । २ ते ।
१०८ १ करैं । २ उच्चरैं ।
१०९ १ हैं । २ रहैं ।

---

†Astrologers Najum (Astrology) in Persian Ancient Hindu Kings kept astrologers at their court. Astrology was a favourite subject among the Muslim Sultans also who had full faith in the Heavenly bodies.

‡Universally accorded to Europeans (the Franks) In India it has a perjudicial significance but not everywhere.

*Calendar

††Sanskrit

‡‡Mark the use of genitive तनी ।

**The obstinate family Charana who won't yield till his reward is obtained by him i e he dose द्वार हठ ।

††A family bard, A 'Bhat' is different from a 'Charana' in that his यजमान may be a non-Rajput also while a Charana accepts the patronage of a Rajput गढ़पति only.

छंद पद्धरी :

वहु विधि के कारीगर अनूप,
परिवार सहित बुलवाय भूप।
तिनकौं[1] पुर मै दीन्हे[2] वसाय,
हासिल† सवकौं माफी कराय ॥११२॥
यह सुजस वढ्यौ चहुधां अनंत,
आऐ वहु जन तिनकौ न अत।
व्यौपार करन लागे अनेक,
वहु भातिन[1] के करि करि विवेक ॥११३॥
कहुं महुर‡ रुपैया[1] लेत देत,
जौंहार विकत सुवरन समेत।
कहुं वस्त्र पाटके वहुरि स्वेत,
मैहमूदी[2] षासा[3] तनसुषेत* ॥११४॥
कहु पसमींना फुनि विकत पान[1],
कहु[2] विकत किराने[3] वहुरि धांन।
कहुं लिऐं कसेरा धात पात्र[4],
वेचत तिनमै नहि झूठ मात्र ॥११५॥
कहुं गंधी अत्तर वेलि तेल,
वेचत मिस्सी†† फुलवा फुलेल।
कहु[1] हलवाईगर वणिक रूप[2],
वेचत जु मिठाई करि अनूप ॥११६॥

---

११२ : १ तिन्हकौं। २ दीन्हें।
११३ : १ भांतिनु।
११४ १ A रुपैया। २ मैहमूदी। ३ षासे।
११५ १ पांन। २ कहू। ३ किरानें। ४ पंत्र।
११६. १ कहु। २ रूप।

---

†Taxes in general

‡Gold coin bearing the seal of the Maharaja.

*All the three varieties find a mention in 'Ain-i-Akbari' of Abul Fazl. (Ain 32)—Blochmann & Jarrett.

††A powder made of vitroil with which women blacken the space between their teeth High class ladies, used antimony for darkening their eye lashes. See Jayasi's description

"छोरहु जटा, फुलायत लेहू, झारहु केस, मकुट सिर देह।
काढ़हु कथा चिरकुट-लावा, पहिरहु राता दगल सोहावा ॥" (Ratansen-Padmavati khand)

मेवा परदेस सुदेस के जु,
वहु लेत देत करि करि मजेज।
कहुं वरणत पारिचा† जरीवाव,
अति गर्व भरे नहि देत जाव ॥११७॥
जरदोज‡ कहूं सीवत वितान[1],
सिरपावन* के वहु वस्त्र-थांन।
रगरेज रँगत कहूं पट सुरग[2],
लहरिया जु वांधत करि उमंग ॥११८॥
कहूं षत्री छीपे चूनरीन,
पोमचे†† वांधि वेचत प्रवीन।
कहुं चूरा‡‡ चित्रत है चतेर[1]**,
कहु वेचत है तिनकौं लषेर ॥११९॥
वहु वसे आय कै[1] सिल्पकार[2],
वहु भातिन के घड़ि संग सार।
देहुरे और मंदिर जु आदि,
तिनकै लावत करि सिल्प यादि ॥१२०॥
कहु वेजारी+ वहु व्यौत साजि,
ते चुनत चुनांवहार[1] काजि।
कहु[2] घड़त[3] ठठेरे[4] द्यौस राति++,
घन आवत मनु दादर‡ वुलात ॥१२१॥

---

११८ . १ बितान। २ स्वरग।
११९ १ चितेर।
१२० · १ कै। २ सिलपकार।
१२१ : १ चुना। २ कहु। ३ घडत। ४ A चतेरे।

---

†Embroidery
‡Gold embroidery
*Full-dress.
††Ladie's scarf.
‡‡Bangles.
**Painter.
+Masons [चेजारी ?]
++Day and night.
‡Frogs.

कहुं रतन-जड़ित[1] जड़िया[2] सुनार,
मुलमची† वेगड़ी‡ सिकलगार*।
वस्मागर वुनगर वरक साज,
कहु वेचत गुड़ी†† पतंगवाज ॥१२२॥
काछी कलार‡‡ लोहे लुहार,
मोची कहुं जीन रचै[1] संवार।
वढई पिरजापति[2]** आदि और,
व्यौपारी फुन कसवी करोर ॥१२३॥
छत्री ब्राह्मण अर वैस्य सूद्र,
च्यारि हू[1] वरण के गुण-समुद्र।
सव सुखी सूर सायर प्रवीन,
वहु चतुर वसै तिनमैं न दीन ॥१२४॥
वहु-मोल सु कोमल वस्त्र अंग,
भूषन मणि-जटित सुवर्ण संग।
जरवाफ+- आदि पहरै वनाय,
नर लसत मनौं सुर[1] वसे आय ॥१२५॥
नारी सुंदर अति चतुर चार,
झीनें पट++ भूषणजुत सिंगार।

---

१२२ : १ जडत। २ जडिया।
१२३ : १ रचै। २ परिजापति।
१२४ : १ हौं।
१२५ : १ स्वर।

---

†An artisan expert in silver or zinc plating.
‡Sk वैकटिक A diamond cutter.
*An artisan who sharpens the blades
††cf, Bihari Satsal. "उडी गुडी लखि ललन की, अगना अगन माह।
वौरी लो दौरी फिरत, छुवति छबीली छाँह ॥३५॥"
An undated Maithili song refers to kite (गुड्डी) thus.
"गुड्डी उडै आकाश मे, नागा हमरा पास मे।"
‡‡Wine-seller.
**A potter.
+-Embroidery.
++Clad in fine clothes.

सुकुमार स्वकिय पिय मन हरंत,
देवांगना[1] न समता करंत ॥१२६॥
पुर-छोर[†] वशी वारांगनां[‡] सु,
वहु करत नांच मनु अपछरा सु।
तिनकौ लषि सुनि संगीत-गांन,
वहु देत रसिक जन रीझि दांन ॥१२७॥
अव सुनहु भूप संपति वयांन,
वरनौं कछू क मोमति प्रमांन।
यक[1] हुतौ वाग तिँह[2] जै-निवास,
नृप रच्यौ वड़ै जयस्यंघ[*] तास ॥१२८॥
ताकौं लषि नंदन-वन लजात,
जल-जंत्र फुहारे वहु छुटात।
तिनतैं ग्रीषम[1] की मिटत झार,
विन समै होत पावस वहार ॥१२९॥
मधि हैं अनेक पादप रसाल,
कहु[1] नूत[2] नूत नूतन[††] तमाल।
कहु[3] वकुल[4] केलि अंजीर वेर,
कहु सेव नासपाती नरेर ॥१३०॥
कहु पारिजात पीपलि[1] लवग,
पिस्ता विदांम केसरि सुरंग।
कहु पनस पुंगि[2] महुवा अरिष्ट,
गूलर कपिथ्थ[3] दाड़िम सुमिष्ट ॥१३१॥

---

१२६ : १ देवागना।
१२८ . १ इक। २ तँह।
१२९ : १ ग्रीषम।
१३० : १ कहु। २ तूत। ३ कहु। ४ वकूल।
१३१ · १ पीपरि। २ पंग। ३ कपित्थ।

---

†At the extremity of the city walls
‡ Prostitutes
*Mirza Raja Jai Singh (b. 1611—d 1667 A.D.)
††Mark the 'yamak' here.

कहुं ताल हिंताल सु वीजपूर,
भल्लात-वेलि परवर षिजूर[1]।
कहुं आंमिलवेत जमूनि निंव,
करणा नारिंग सु पक्क विंव ॥१३२॥
अभया विभीति[1] आमिल छुहांर,
कहु दाष ईष ऐला[2] अपार।
जाती फुलन्यौज[3] जभीर वोट,
सीताफल मीठे हैं षरोट ॥१३३॥
वहु फूले वृछ[1] अनेक जाति,
करणा केतगी कदंब-पांति।
केवरा कुंद चंपा गुलाब,
मचकुंद सेवती मोगराव ॥१३४॥
कहु गुल व[1] गुला फूल्यौ नवीन,
कहु कुसम फिरंगी गुल[2] अचीन।
गुललाला दाऊदी हजार,
कहु गुलहवास रंग वहु प्रकार ॥१३५॥
चंदन असोक कहु[1] कोविदार,
वंधूक वहुरि सिंगार-हार।
ईह[2] विधि फूले वहुवृछ[3] वेलि,
तिन मांहि भ्रमर मन करत केलि ॥१३६॥

अरिल अन्योक्त[1] :

सीतल मंद सुगंध पौंन सचु पायकैं,
सघन छांह मै वैठि विहगम आयकैं।
नैन मूंदि अति चैन भरे अव रेषिऐ,
मनौं महा मुनि लीन वृह्ममय देषिऐ ॥१३७॥

---

१३२ : १ षजूर।
१३३ : १ विभीत। २ एला। ३ फलन्यौं।
१३४ : १ व्रिछ।
१३५ : १ वु। २ अरु।
१३६ : १ कहु। २ इह। ३ व्रछि।
१३७ : १ अरिल only.

विरह-वेदना कहत मनौं पिक टेरिकै,
सुनत भौंर हुंकार देत मन फेरिकै।
तरु-वेलनि कै रहे फूल-फलझूलि वे,
देखत सुर नर आत-जात मग भूलि वे ॥१३८॥
वहुरि ताल यक[1] तालकटौरा है तरै,
मनौं सरोवर मान देखि छवि कौं हरै।
वहुरि सवाई जयसागर यह[2] नाम है,
ताकी तीरन[3] सुभटादिक[†] के धांम है ॥१३९॥
विमल नीर तें भरे लखै आंनद ह्वै,
पछी-गन तहँ विहरत आय सुछंद ह्वै।
चक्रवाक चातिक[1] चकोर चहु देखिऐ,
कहुं कपोत कलहंस कोकिला पेखिये ॥१४०॥
कहूं मोर नाचत छत्री करि चावसौं,
कहु सारिस कहुं वुग ठाढे इक पाव सौं।
कहूं वैठि कलवक संक तजि रति करै,
कहु ट्टिट्टभि कुकटनु आदि वहू षग तिरैं ॥१४१॥
कहूं करत नर कांमिनि आय सनांन कौं,
मनौं सुरसुरी[1] आए छाड़ि[2] विमान कौं।
वहुरि मांनसागर यक दीरघ ताल है,
तामैं सरिता मिली सु अति सोभा लहै ॥१४२॥

दोहा[1] : या विधि कछु सछेप[2] से, वरने सरवर वाग।
अव नृप मदिर वर्न[3] कछु, सुनिऐ करि अनुराग ॥१४३॥

छंद पद्धरी : लषि वाग सघन अदभुत नरिंद,
वनवाऐ ता मधि महल-वृंद[1]।

---

१३९ १ इक। २ इह। ३ तीरनि।
१४० १ चातिग।
१४२ १ स्वर-स्वरी। २ छाडि।
१४३ . १ दौहा। २ संषेप। ३ वरन।
१४४ : १ विंद।

---

†Feudal-chiefs.

सतषणे[२]† कलस सुवरण[३] उतंग,
तिना[४] परि ध्वज फहरत[५] पंचरंग‡ ॥१४४॥
आंगन फटिक स मलै पषांन,
मनु रचे विरंचिजु करि सयांन।
दै[१] आव सलिल सम तिह वनाय,
तँह प्रगट परत प्रतिविंव आय ॥१४५॥
मणि-कचन-जटि मधि करी भींति,
दुति लषी परत लषि कै पछीति।
जँह कनक-पाट दीने[१] कपाट,
किय जटि विडूर* सोपांन वाट ॥१४६॥
मणि-षचित षंभ मधि जगमगात,
मनु रतन-सांन वहु विधि लसात।
वहु रची चित्रसाली[१] विसाल,
राजिंद्र[२] रमत तँह सहित वाल ॥१४७॥
कवहू मणि-मंदिर मांहि जाय,
तिय दूजी लषि प्यारी रिसाय[१]।
तव मांनवती लषि पिय हँसाय[२],
कर जोरि २ लेहैं[३] मनाय ॥१४८॥
मणि-जटित कुंभ अति जगमगांहि,
वहु भरे सुव्व[१] जल तै लसांहि।
दधि - दूव - धूप - जुत - हेम सार[२],
सोहत अंतहपुर द्वार द्वार ॥१४९॥

---

१४४ : २ सतषणें। ३ कंचन। ४ तिन। ५ फैहरत।
१४५ : १ दे।
१४६ : १ दीन्हैं।
१४७ : १ चित्रसारी। २ राजेंद्र।
१४८ : १ रिसाइ। २ हसाय। ३ लैहैं।
१४९ . १ सुद्ध। २ थार।

---

†The poet refers to the Chandra Mahal Palace, the following are the names of the seven storeys, Chandra Mahal, Pritam Niwas, Sukh Niwas, Shobha Niwas, Chabi Niwas, Sri Niwas and the Mukut-Mahal.

‡The royal banner of the Kacchawaha Rajputs of Amber.

*Sk. वैदूर्य।

प्रीतम[1]-निवास फुनि सुष निवास,
बैठक दीवांन सभा-निवास।
फुनि चंद्र-महल[2] आदि जु अवास,
कवि करै कहां लौ वरन तास ॥१५०॥
ऊचे दरवाजे सुगम वाट,
कंचन-सम जटित वने कपाट।
लगते वनवाऐ चौक ईस,
तँह रहैं कारषांने छतीस ॥१५१॥
यह[1] हुतौ कारषाने[2] त नौंस†,
पारसी‡ नांम ता मद्धि दोस।
नृप काढि हिंदवी नांम कीन,
गृह-संग्या* यह ठांनी नवीन ॥१५२॥
गज-ग्रह मैं गज मद झर लसात,
ऐरावत हू तिनु लषि लजात।
सुंडिन मैं ते लैकै पहार,
फैकत है पारावार†† पार ॥१५३॥
वहु अस्व-साल[1] मधि है[2] तुरग,
राजत है सुंदर अति उतग।
फेरत'र के विनु मैं फिरै सु,
मन[3] पवनहु तै आघे कढैं सु ॥१५४॥
फुनि रतन-गृहै अरु धन-भंडार,
तिनके वरनन कौ है न पार,
इन आदि ग्रहै[1] जो हैं समस्त,
भरि पूरि रहो तिन मांहि वस्त ॥१५५॥

१५० १ प्रीतिम। २ महैल।
१५२ : १ येहु। २ कारषानै।
१५४ : १ अश्वसाल। २ जे। ३ मनु।
१५५ १ Aग्रैहै।

†In as much as,
‡Persian.
*Nomenclature
††Ocean

छंद : मत्री घने[1] बुधिवांन है[2], जानै जिन्हैं सु जिहांन है।
सौंप्यौ तिन्है नृप भार कौं, हक देत -है हकदार कौं ॥१५६॥
अंगी† अनेक षवास ते, अति चतुर गिनत उसास ते।
वहु कांम के वहु भांति के, संपति सहित सुभ कांति के ॥१५७॥
वहु सुभट सजि आवै जहां, वैठै सभा मधि नृप तहां।
जैसै हुकम भूपति करै, तैसै करैं नांही टरै ॥१५८॥
इन आदि चाकर हैं जिते, हक पाय राजी ह्वै तिते।
प्रभु-भक्ति करि जस गात हैं, सुष माहि द्योंस वितात हैं ॥१५९॥

दोहा : पाचौं विधिजुत राज परि, राजत कूरम भान।
रैति‡ सुषी भडार वहु, नीति सु दांन क्रपांन ॥१६०॥

छंद पद्धरी. चहुधा पुर[1] कै गिर है उतंग,
तिनपै गढ बनवाऐ[2] उतंग[3]।
पूरव दिसि गढ रघुनाथ[4] नांम,
तलि तीरथ गलता है सु ठांम ॥१६१॥
दक्षिण दिसि संकर-गढ अनूप,
वनवायो माधवस्यघ भूप।
हथरोही कौ गढ दुतिय जांनि,
पछिछम[1]हि सुदरसन गढ वषांनि ॥१६२॥
उत्तर अंवावति है सुथांन,
तापै स्वाई जै-गढ महांन।
उत्तर दक्षिण[1] की कूंण पाय,
इक ब्रंह्मपुरी* दीन्ही वसाय ॥१६३॥

---

१५६ : १ घनै। २ है।
१६१ : १ चहुघांपुर। २ A वनवाऐ। ३ अभग। ४ रुघनाथ।
१६२ १ पछिम।
१६३ १ पछिम।

---

†Bodyguards
‡The Rayyiat
*For Brahmins to reside there

कवित[1] प्रथम कुमर पदई मैं वड़ी जंग जीत्यौ,
प्रतापीक : कूट्यौ दल दषिनी[2] कौ, गहें सर चाप सौ।
वूंदी जिन रूंदी कोटावारे पर डंड लयो,
सवही सराहत सवाई भयो[3] वाप सौं॥
विरचि वचैंगे न मवासे महि मंडल मैं,
संमृति विचारि जे वचैंगे जय जाप सौं।
सवाई ईस्वरसिंघ[4] महाराज[5] नरनाह,
रांग भयो रांनां तेरे पावक प्रताप सौं॥१७२॥

दोहा : वहुरि पाटि वैठे नृपति, रांमपुरे तै आय।
भाई माधवस्यंघ जू, दुरजन कौं दुषदाय॥१७३॥

कवित्त : जिन रांमपुरे मैं करी निज चाकरी,
सो घरि राषी विचारि हिये।
फिरि पाय कै राज ढुंढाहर कौ,
सु नऊ निधि के सुष आंनि लिये॥
भनि 'राम' कृपातै भले ही भलै,
अमरेस के से जिनु दांन दिये।
हरि ऐक सुदांमां निवाज्यो[1] कहूं,
नृप माधव केई सुदामां किये॥१७४॥

सोरठा : दिये दिवाये दांन, जस प्रगट्यो दसहूं[1] दिसनि।
उवै जगत परि भांन, राज कियो[2] यम[3] मुलक परि॥१७५॥
आगै नृपति अनंत, जतन किये आयो[1] न गढ।
रणथंभौर महंत, सौ माधव सहजै लह्यौ[2]॥१७६॥

कवित्त[1] : ऐसी मौज कढत सवाई माधवेस कर,
सुवरन-झर ज्यौं प्रवाह नदी नद के।

---

१७२ १ कवित्त। २ दक्षिनी। ३ भयो। ४ ईश्वरस्यंघ। ५ महाराजि।
१७४ . १ वाज्यो।
१७५ १ दसहौं। २ कियो। ३ इम।
१७६ १ आयो। २ लयो।
१७७ १ कवित्त अन्योक्त।

छंद पद्धरी :

अब सुनिऐ भविजन वात ऐक,
देहुरे वने पुर मै अनेक।
सोहत सुंदर सिव विस्नु[1] जैन,
तिनकी उपमा[2] कहतें वनै न ॥१८४॥
षटमत के नर-नारी प्रवीन,
निज धर्म मांहि निति रहै[1] लीन।
तिन मांहि देहुरा ईक[2] विसाल,
तँह राजत नेम प्रभू दयाल ॥१८५॥
लसकरी नांम कहियत महांन,
मनु रच्यौ विरंचिजु करि सयांन।
मधि चौंरी प्रभुकी मत प्रमांन,
अति वनी फटिक सम लगि षषांन ॥१८६॥
ता मांहि जटित है स्यांम संग,
मनु लसत नील मनि[1] अति सुरंग।
चित्राम वन्यौ तामै अनूप,
लखि[2] भविजन पावत निज सरूप ॥१८७॥
पंडित तहां राजत है कल्यांन,
वहु तरक न्याय वांचत पुरांन।
निज धर्म[1] कर्म मै सावधांन,
विन धर्म वात जिनकै न आंन ॥१८८॥
गुनकीरति यक मुनिवर महांन,
तप करत अधिक जिनमत प्रमांन।
तिन[1] आग्या दी यह रचहु गृंथ[2],
जामै वहु विधि ह्वै जैनि पथ ॥१८९॥
मुनि सघ गछ्छ ह्वै[1] आमनाय,
जिनकी उतपति कहिऐ वनाय।

---

१८४ : १ विश्नु। २ उपमा।
१८५ : १ रहैं। २ इक।
१८७ : १ मणि। २ लषि।
१८८ : १ धर्म्म।
१८९ : १ तिनु। २ ग्रंथ।
१९० : १ गण।

तिन मांहि फटे[†] हैं गछ अनेक,
गहि चलन नऐ सु कहौं प्रतेक[२] ॥१९०॥
फुनि मुनिजन कौ जो चलन धर्म[१],
तिनकौ हू विधिवत कहऊ[२] मर्म।
प्रभु महावीर तैं[३] जे मुनींस,
अवलौं भट्टारक है जतीस ॥१९१॥
इन[१] जहां जहां पायो पदस्त,
सोहू वरन[२] करिऐ समस्त।
श्रावग[३] के हैं जो खांप[४] गोत,
तिनकौ वर्नन[५] करिऐ उद्योत[६] ॥१९२॥
फुनि अहोरात्रि किरीया[१] करैं सु,
जिन धर्म जु जैनी जिम धरैं सु।
विधि दया[२] दांन की कहौं सर्व,
तिम श्रावग साधहि त्याग गर्व ॥१९३॥
श्रांवग मुख वात कहैं कित्तेक[१],
जिनमत की वहु विधि करि विवेक।
सोहू धरिऐ या गृथ माहि,
लखि ससय भविजन के[२] मिटाहि ॥१९४॥
यह आग्या पाई वखतरांम,
गोत है साह चाटसूं[‡] ठांम।
पडित कल्यान तैं विनति कीन,
यन[१] कौ हू गृंथ रचैं नवीन ॥१९५॥

---

१९० · २ प्रत्येक।
१९१ १ धर्म्म। २ कहहु। ३ तैं।
१९२ · १ इनु। २ वरनन। ३ श्रावक। ४ पाप। ५ वरनन। ६ उद्योत।
१९३ : १ किरिया। २ दया।
१९४ १ कितेक। २ कै।
१९५ · १ इन।

---

†Divided
‡About 27 miles S-E of Jaipur.

फुनि चांदूवाड़ सत्तोषरांम[1],
भावसा रूड़मल बुद्धि धांम।
मिलि कही ग्रंथ रचिऐ अनूप,
जातै जानै जिनमत सरूप ॥१९६॥
इम इनकी अधिक सहाय पाय,
वरनत हौं अब कविता बनाय।
जो यामै चूक कछूक होय,
लषि हसहु न दुरजन सजन लोय ॥१९७॥

दोहा : प्रथम ग्रंथ हौ संसक्रत[1], नीतिसार† हितकार।
ईंद्रनंदि मुनि करि रचित, जिन वांनी अनुसार[2] ॥१९८॥
जिनमत में तै और मत, तूतन चले कितेक।
तिन परि संसय मिटन कौं, रच्यौं ग्रंथ यह ऐक ॥१९९॥
तव ताकौ कीन्हौं अरथ, पंडित महा कल्यांन।
वखतरांम भाषा करी, ताही तनै प्रमांन ॥२००॥

प्रथम भाषा ग्रंथ की

चौपई : श्रीजिन नेम जगतत्रय नाथ, तिनकौं नमौं जोरि जुग हाथ।
जे जग मांही मुनि अनगार, परम तत्व के जाननहार ॥२०१॥
तिनकी संपति महा मनोग्य, सुरपति करि सराहिवा जोग्य।
तिनकौं नीतिसार यह ग्रंथ, कहि हौं[1] सकल चलन सुभ पंथ ॥२०२॥

---

१९६ . १ सतोषराम।
१९८ : १ सस्कृत। २ अनुसरि।
२०२ : १ है।

---

†Publd as No. 13 of the 'Manekchandra Digambara Jaina Granthmala', Hirabag, Bombay. It contains 110 stanzas, and in verse 70 the author Indranandin refers to Nemichandra. Other copies of the work have been found at Arrah, Bombay, Idar, Jaipur etc (H. D Velankar's 'Jinaratna Kosa' Vol I p 216) Two copies of the work are preserved in the Digambar Jain Bada Mandir, Jaipur, (Catalogue Comp. by Dr K. C. Kasliwal, pt. II) The author has been styled as इन्द्रनन्दि योगीन्द्र। 'Nitisara' is not a voluminous work. Most probably the author refers to Indranandin, whom Acarya Nemichandra holds as श्रुतसागरपारगामी in the Gommatasara.

वाही जंबूदीप मझारि, दक्षिण[1] दिसि लीजिये विचारि।
तामैं भरथक्षेत्र[2] ता माहि, मद्धि देस अति सुव वसाहि[3] ॥२०३॥
श्री म्हावीर जु सिवपुर गऐ, ता पीछै[1] जे मुनिवर भऐ।
यसौभद्र[2] लौं सकल छवीस, फुनि हुव भद्रवाहु मुनि ईस ॥२०४॥

दोहा : वन छवीस के नाम जो, देख्यौ चाहौ कोय।
वरनौं जहां पटावली, तामैं लषियो[1] लोय ॥२०५॥

चौपई : काल चतुरथ जु भयो वितीत, तव आयो पचम भयभीति[1]।
भऐ अवंती विक्रम भूप, भद्रबाहु मुनि हुते अनूप ॥२०६॥
ते तौ स्वर्ग पहौंचे[1] जाय, फुनि जो भईस सुनि मन लाय।
वे प्रभु वर्धमान जिनराय, तिनकौ मत भविजन सुषदाय ॥२०७॥
सघ वहुत प्रगटे ता मद्धि, यह विचित्र गति काल प्रसिद्धि।
निज इछा माफिक जग जवै, चलन लग्यौ आपस मै सवै ॥२०८॥
पाप ताप करि मोहित होय, काहू की मानत नहि कोय।
तव जे मुनि हे महा प्रवीन, परमाथी सु[1] आतम लीन ॥२०९॥
तिनकै मन[1] विचार अपनो[2], अपने और पराऐ तनौं।
जो इनकी वंधै न मरजाद, तौ न मिटै तस तनो विषाद ॥२१०॥

दोहा : ऐक-मेक ता सवनि की, लषि कै डरे महंत।
तव उत्तम[1] पुर षानि कै, निमत[2] विचारी संत ॥२११॥

सोरठा : संघ गछछ[1] गण सार, साषा ऐ च्यारौ सुविधि।
करिकै परम विचार, प्रथम सथापे मुनिनु के ॥२१२॥
ग्राम नगर कै नाम, खांप[1] गोत श्रावगनि के।
ठहराऐ लषि ठाम, सो अवलौं यह[2] प्रगट है[3] ॥२१३॥

---

२०३ . १ दषिण। २ भरतषेत्र। ३ वसाहि।
२०४ १ पीछै। २ यसोभद्र।
२०५ १ लषियौ
२०६ १ भयभीत।
२०७ : १ पहुचे। ।
२०९ . १ स्व।
२१० : १ मनि। २ ऊपनौ।
२११ १ उत्तिम। २ निमति।
२१२ . १ गछ।
२१३ . १ षांप। २ ए। ३ हैं।

दोहा : तामैं सब श्रावकन की, जिम उतपति है चारु।
सो तौ आगैं वरनि हौं इनकौ सकल प्रकार ॥२१४॥
प्रथम वरन मुनिगननु कौ, कीजत है सुभ जांनि।
ग्रंथन[1] के अनुसार तैं, सब जन कौ सुखदांनि ॥२१५॥

प्रथम संघादि-उतपति

चौपई . भद्रवाहु मुनिगन के ईस, तिनके पट मैं भयो मुनीस।
संवत छब्बीसा के साल, नाम तीन तिन लहे रसाल ॥२१६॥
गुप्त-गुप्त आचारिज भऐ, दुतिय नांम अर्हद[1] वलि दऐ।
त्रितिय विसाखाचारिज नांम, ताकै सिक्षि च्यारि अभिराम ॥२१७॥
इक तौ माघनंदि मुनिराय, व्रषा[1] जोग दिय तरु तलि जाय।
तिनकौ नंदिसंघ थापियो[2], गछ्छ सरस्वती निमापियो ॥२१८॥

चौपई[1]: पारिजात-गछ्छ[2] हू कहैं, गछ्छ-नांम ऐ दो निरबहैं।
गण थाप्यौ है बलातकार, साषा तिनकी थरपी[3] च्यार ॥२१९॥
नंदिकीर्ति[1] भूषण फुनि चंद, ऐतौ या विधि भऐ अमंद।
दूजे देवसिंह[2] मुनिराज, कहिऐ श्री जिन धर्म-जिहाज ॥२२०॥
सिंघ-गुफा मधि वरषा जोग, तिन मुनि दीहौ महामनोग।
सिंघ-संघ तिनकौ निरमापि, चंद्र-कपाट-गछ्छ दिय थापि ॥२२१॥
गण काणू[1] रस थाप्यो मुनी, साषा च्यारि नांम भवि सुनी।
आश्रव कुंभ सु सागर सिंघ, ईनमैं[2] लषिऐ ग्यान अभंग ॥२२२॥
तीजो[1] सिषि[2] सेनि मुनि भयौ, वृषा जोग कूं चाललि[3] दयौ।
सेनसंघ[4] पुसकर गछ धरचो, गणसूरस्थ[5] नांम यह करचो ॥२२३॥
साषा च्यारि सुणौं गुणधीर, सेन राजभद्र फुनि वीर।
चतुरथ सिंघि[1] देवमुनि इंद[2], वरषा जोग धरचो गुणवृंद ॥२२४॥

---

२१५ . १ गृथनि।
२१७ १ A अरहद।
२१८ १ वृषा। २ थापियो।
२१९ · १ A missing। २ गछ। ३ थापी।
२२० १ नवकीर्त्ति। २ देवस्यघ।
२२२ १ कांणू। २ इनमैं।
२२३ · १ तीजो। २ सिष्य। ३ चातलि। ४ सेन स्यंघ। ५ सूरस्छ।
२२४ . १ सिंघ। २ इद।

देवदता वेस्या घरि जाय, तप कीन्हौं तिन मन वच काय।
देवसघ[1] थाप्यौ तिन[2] तनौं, सोभित देवप्रभा सम मनौं ॥२२५॥
गछ पुसतकगण देसी ठानि, साषा च्यारि करीऐ जानि।
देवदत्त पुग फुनि नाग, तिनकौ है जग मैं सोभाग ॥२२६॥
जिहि जिहि[1] थांनक मुनि दिय जोग, तिह विसेष किय नाम सँजोग।
इम साषा गण गछ संघ सवै, थपे मुनी अर्हद[2] वलि तवै ॥२२७॥
इन च्यारिनु कौ कियौ मिलाप, मेटन कौं जग को अघ ताप।
च्यारिनु मैं दीक्ष्यादिक[1] कर्म, तिनमैं भेद नही को भर्म ॥२२८॥
फुनि पडकमणा प्राछत[1] जान, ग्रंथ अचार सु और पुरांन।
तिन कै मधि विसेषि[2] को संत, भेद न जानहु[3] सकल महंत ॥२२९॥
इनकी आमनाय मैं कोय, जो जिन विंव प्रतिष्ट्यो होय।
जे भविजन है या जग माहि, ताहि मांनियौं संसय नाहि ॥२३०॥
औ संघ कीजो अमनाय, तामैं विंव प्रतिष्ट्यो जाय।
ताहि मानिवो नहि कुल-रीति, वामै न्यास तणी विपरीति ॥२३१॥
ऐही सघ जगत मै सार, स्वै परमोक्ष दिषावनहार।
इनमैं भेद कियौ जो चहै', नहि समकिती मिथ्याती वहै ॥२३२॥

अथ आचारिज आदि गृहस्थाचार[1]-यति[2]-वर्नन

चौपई : जे मुनि पालै पंचाचार, ह्वै वे ता मुषि मूलाचार।
सोही च्यारि सघ मैं मांनि, आचारजि कहिऐ गुनखांनि ॥२३३॥
नय अनेक करि साख सकीर्ण, तिनके अरथ[1] माडि परवीण।
समरथ कर वामैं व्याष्यान, पचाचार माहि रत जान ॥२३४॥
सोही सही उपाध्या होय, अवै साधु-गुण सुणि भवि-लोय।
सकल परगृह[1] रहत[2] जु होय[3], करै नही व्याष्यान जु कोय ॥२३५॥

---

२२५ १ देवस्यघ। २ तिह।
२२७ १ जिह जिह। २ A अरहद
२२८ १ विष्यादिक।
२२९ १ प्राछित। २ वसेष। ३ जानहु।
२३२ १ वहै।
२३३ १ गृहस्छाचार्य। २ ति only।
२३४ १ अर्थ।
२३५ १ परिगृह। २ रहित। ३ सोय।

दिक्षा सिष्यादि करे[1] कर्म, तातै ह्वै विरक्त गहि धर्म।
मौनि[2] ध्यांनजुत ह्वै जो साध, ताहिं जांनियौं निर-अपराध ॥२३६॥
साख कला नाना परकार, तिनमै चतुर होय गुणधार।
गछ्छ वधांवन वुधि तिह तनी, ऊचे[1] मन कौ[2] ह्वै जो मुनि ॥२३७॥
फुनि वै[1] कातिवांन हू होय, ताहि भटारक कहिऐ लोय।
तत्व अरथ[2] सूत्रन[3] व्योष्यान, क्रिया-कलापन[4] मांहि सुजान ॥२३८॥
सो स्वामी कहियतु है चाहि, मुनि सत्तम हूं कहिऐ ताहि।
ऐतौ भेद मुनिनु के भणें, सुणहु ग्रहस्थाचारिज तणें ॥२३९॥
जो गृहस्थ[1] सुध[2] ह्वै कोय, जिनमत तणे साख जो होय।
तिनको[3] पढन-पढांवन-हार, करन-सुनन की ह्वै वुधिचार[4] ॥२४०॥
कथन सुनावत हू ह्वै चाहि, ह्वै अजीवका याही मांहि।
सवतै पूजनींक ह्वै रहै, ताहि गृहस्थाचारिज कहै ॥२४१॥

अथ मुनिजन कौं धर्मकार्य करवा कौ वा अधर्म-कार्य तजवा कौ वा जोग्य अजोग्य कारिज करवा न करवा कौ उपदेस वा श्रावक[1] कौं उपदेस वर्नन भाषा गृंथस्य।

चौपई : नंदि सिंघ देव फुनि सेन, ऐ उतकिष्ट संघ मत जैन।
तिनकौं जोग्य अजोग्य विचार, भाष्यौ नीतिसार मै सार ॥२४२॥
इन च्यारिनु के है मुनिराय, होय विसंघी तिनही सिवाय।
तिनकी पंकति-भोजन जांनि, करिवो जोग्य[1] नही सुषदांनि ॥२४३॥
वहुरि विसंघी लषि कै मुनी, न करि नमोसत यह गुर भनी।
च्यारयो[1] मिलि नसि असन करांहि, तामैं दूषन भाष्यो[2] नाहि ॥२४४॥
फुनि मुनि सावधांन ह्वै घणौं, श्रावक-संघ विसंघी तणौं।
तिनकौं करै न अंगीकार, कीऐं लागत दोष अपार ॥२४५॥

---

२३६ १ कए। २ मौंनि।
२३७ १ ऊंचे। २ को।
२३८ . १ वह। २ अर्थ। ३ सूत्रांनं। ४ कलापनि।
२४० . १ गृहस्त। २ सुद्ध। ३ तिनकौं। ४ वुधि चारु।
२४२ : १ श्रावग।
२४३ . १ ज्योगि।
२४४ : १ चारयौं। २ भाष्यौं।

विसंघीन[1] को[2] सेवग[3] होय, वह श्रावक जो अपणो[4] कोय।
ताकी गृहण करै नहि दोष, निज मत कौं करिवा कौं पोष ॥२४६॥

अरिल : मिथ्यादृष्टि तणी परीष्या कीजिए,
तवही वाकौं निजमत दीक्ष्या दीजिऐ।
विना परीक्ष्या दरसण-मत की हांस्य ह्वै,
वहुरि आप अरु धर्म तणौं भी नास ह्वै ॥२४७॥

छंद गीता : लषि वाई श्रावकणी अजिका जिह थांनक मैं वसती होय।
वहुरि[1] मंडो[2] चित्राम-तणी ह्वै फुनि ह्वै और जाति की कोय[3] ॥
इनकै ढिगि ह्वै काम उदीपन मन अति चंचल ह्वै गुन षोय।
तिह थानक मुनिराज सर्वथा[4] निसि मैं सुष सोवहु मति कोय ॥२४८॥

दोहा चित्र तणी हू फूलती, लषि उपजत अनुराग।
तौ प्रतक्ष तिय सगि[1] रहैं, क्यौं न लगै मुनि-दाग ॥२४९॥
राह माहि भी अजिका, साथिन मुनि चालंत।
आगै भी इन सग तैं, दूष अति पाऐ संत ॥२५०॥
होय अकेली जो तिया, ताकै संगि मुनीस।
भोजन करै न वैठही, गोष्टि करै न भलीस ॥२५१॥
जिह जिह[1] थानक कै विषै, इद्री धरै[2] विकार।
ताहि छाडि मुनिवर करै, चारित रक्षा-सार ॥२५२॥

छंद गीता : सामायक सतवन वंदन फुनि पड़कमणौ[1] अर[2] प्रत्याक्ष्यान[3]।
वहुरि करै कायोतसर्ग सव ऐ षट कहे आवसिक जांन ॥
ऐ किरिया तजि और[4] क्रिया कछु करहि न वहुरि गीत वाजित्र।
रसमय चित अनुरागि सुनैं नहि तजै रहै मुनि सदा पवित्र ॥२५३॥
जिह जिह साख और विद्या करि समकित[1] सजमादि गुण हांनि।
होत मुनिनु कै सो सव सेवन छाड़हि जे मुनिवर गुनषानि ॥

---

२४६ : १ विसघीनि। २ कौं। ३ सेवक। ४ अपणौं।
२४८ १ वहुर। २ मडो। ३ जोय। ४ सरबथा।
२४९ : १ सँग।
२५२ : १ जिह जिह। २ धरं।
२५३ . १ पडिकमण। २ अरु। ३ प्रत्यांक्ष्यांन। ४ ओर।
२५४ १ समकित।

अजिका सिष्य गृहस्थ आदि नर थोड़ी वुधि वाले जो[२] होय ।
तिन आगै सिधांत आचार सु गृंथन वाचहि जे मुनिलोय ॥२५४॥
होय[१] विसंघी जती सु तिनकौं गृंथ सिधांत अवर आचार ।
कवहू नाहि सुणाय पढावहु सुणिवौ हू वनकौ नहि चार ॥
वहुरि वंदना पीछै[२] पहली कवहूं करिवो नांहि न[३] जोग्य ।
अैसै कही सासत्रिन[४] मै गुरु धारहि ते मुनि महामनोग्य ॥२५५॥

छंद अरिल[१] : दीषित[२] होय नवीन मुनीस्वर जासकौं,
वडी अर्जिका होय सु वेदै[३] तासकौं ।
भक्तिभाव करिकै सव संका यरहरै[४],
अजिका तै मुनि प्रथम वंदना नाहि करै ॥२५६॥
अजिका आप नमोस्त मुनी कौं जव करै,
कर्मक्षयोस्तु समाधिरस्तु मुनि ऊचरै ।
श्रावग करै नमोस्त जपै मुनिनाथ सौ,
धर्म-विधी[१] देवै तव मुनि निज हाथ सौं ॥२५७॥
मिथ्याद्रष्टी[१] भी कोई वंदन कहै[२],
परि वह भले वरण कौ ह्वै निज कौं चहै[३]।
ताहि मुनीस्वर धर्मविधि[४] कहि अघ हरै,
सूद्रनि कौं कहि धर्मलाभ राजी करै[५] ॥२५८॥
समकित दरसण[१] करि चांडाल जु सुद्ध ह्वै,
करै वंदना मुनि कौं[२] मुनी सुवृद्ध ह्वै ।
पापक्षयोस्तु कहै ताकौं सुभ वै नहीं,
वाकौं और कहन की विधि कछु हैं नही ॥२५९॥

कवित्त . गायक तमोली तेली माली छीपी कोटवाल,
वहुरि कलाल मद वेचै है वनाय कै ।

---

२५४ · २ जे ।
२५५ . १ होत । २ पाछै । ३ नु । ४ सासत्रिनि ।
२५६ : १ A अरिल only । २ दीक्षत । ३ वदै । ४ परि हरै ।
२५७ : १ वृद्धि ।
२५८ · १ दिष्टि । २ कहैं । ३ चहैं । ४ वृद्धि । ५ करै ।
२५९ : १ A दरण । २ कौं ।

वेस्या और दाई फुनि मांगि षाने वाले,
जन मद वेचै पीवै तिन संगि रहे चाय कै ॥
केते नींच कर्म करि आजीवका पूरी करै,
इन आदि सूद्रह नै जीवनि उपाय कै।
तिन कै मुनीस सावधांन ह्वै जो,
धर्म माझि करै न अहार धरि सर्वथा हीं जाय कै ॥२६०॥

छंद गीता : महा मिथ्याती के घर मै मुनि भोजन नाहि करै इम जानि।
वनकै[1] वस्त सदोस वायरै तिह[2] कारणि[3] त्यागै दुषदांनि ॥
यातै भलो रसोई करि निज जो जीमण ठानै तौ ठांनि।
भाषी अधिक दोष लषि कै भवि निश्चै नयन कही यह वानि ॥२६१॥
ह्वै मध्यांन समै तवही लषि दीन अनाथ दुषी को जीव।
तिनकौं भोजनादि वस्तनि[1] कौं हित करि कै द्रावत[2] सदीव ॥
इह[3] विध[4] करत[5] सावधानी जे दयाभाव उर[6] धारि मुनिंद।
पूजनीक ते[7] मुनिनु माझि ह्वै करहि प्रससा तिनकी इँद ॥२६२॥
मुनिवर होय तावड़ै ठाढे फुनि छाया कै मधि आवत।
छाया तै चलि जात तावडै[1] काहू कारणि[2] जे गुण संत ॥
काली धरती तैं गोरी मधि गोरी तै काली मैं जात।
दया जानि जीवनि की लै करि पीछी सोधत है निज गात ॥२६३॥
रुके होय घर जा गृहस्थ[1] के वँधे होय सु[2] आंगन मांहि।
विण[3] त्रिण वहुरि अन्न सूकत इन आदि जु कर्म सदोष[4] लषाहि ॥
भोजन करै नही मुनि ता घरि दोस न ह्वै ता कै घरि जाय[5]।
ठाढे सात स्वास लौं रहि फुनि दाता न ह्वै और[6] घरि जाय ॥२६४॥

चौपई[1] मुनिवर भलो[2] वुरो[3] भी कोय, अपणो और परायो[4] होय।
भूष मरत लषि कै अंन-दान, देहु गृहस्थ विलवन ठांनि ॥२६५॥

---

२६१ : १ उनकै। २ तिह। ३ कारण।
२६२ : १ वसतनि। २ द्यावत। ३ इह। ४ विधि। ५ करै। ६ कौं। ७ जे।
२६३ : १ तावडै। २ कारण।
२६४ : १ ग्रहस्छ। २ पसु। ३ विन। ४ दोस। ५ आय। ६ और।
२६५ : १ चोपई। २ भलो। ३ वुरो। ४ परायो।

छपै : सम्यकद्रष्टी[1] होत[2] ग्यान चारित्र धरै विनि।
सो अतिसय करि पात्र होय आचर्ण[3] करै मुनि॥
मिथ्याद्रष्टि होय ग्यान चारित कौ धारी।
सो नहि पात्र कहात कुमारग[4] को अधिकारी॥
जे होत सुपात्र सुमारगी तिन्है दांन देवो जुगति।
मति पाषंडी कौं देहु भवि दिऐ वढै मिथ्या कुगति॥२६६॥

सोरठा : जीरण ह्वै जो कोय, प्रतिमा पोथी देहुरा।
फिरि थापें अति होय, पुंन्य न ऐहू करण तै॥२६७॥

सवैया : सूतौ तथा चित्त द्वै उदविघ्न[1], करै मल मूत्र किधौ जवही को।
कर्म क्रत्तौ होय निंदिहू ताहि, करे नहीं वंदना साध-रतौ को॥
ह्वै सावधांन जवै सव ही विधि, धर्म औ ध्यान मै लीन जतौ को।
ताही मुनिस कौं वंदना जोग्य, कही करवो सु भलौ[2] सवही कौं॥२६८॥

दोहा : करि नमोस्त निरगृंथ कौं, अजिका कौं वंदांम।
उत्तिम[1] श्रावग कौं करै, निज मुष तै इछांम॥२६९॥
भोजन नमरण सु आदि को, जे हैं रीति सुजांण।
पूर्वाचारिज मांनि ह्वै, सोही करहु प्रमांण॥२७०॥

सोरठा पूर्वाचार्य उलंघि करै, रीति वोछी अधिक।
वह मिथ्याती संघि, वड़े पुरिष वंदै नहीं॥२७१॥

छंद पद्धरी : मुनि ऐकाकी जु करै विहार,
पावै नहि धर्म कहूं लगार।
दूजे मुनिकै रहिजे जु[1] संग,
तव हीयै है सुभ धर्म अंग॥२७२॥
मुनि पांच च्यारि फुनि कहैं[1] तीन,
तिनहीं कै साथि मुनि नवीन।

---

२६६ : १ दिष्टि। २ होय। ३ आचरण। ४ कुमारिग।
२६८ : १ उदविग्न। २ भलै।
२६९ १ उत्तम।
२७२ : १ सु।
२७३ . १ कहे।

करिए विहार इक रहहि[2] नांहि,
गिणती कौ ह्वै वह गल्छ मांहि ॥२७३॥
मद मास मधू विनि मंत्र साधि,
वहु करत सिद्धि देवनि अराधि।
जे मद आदिनु तै होत सिद्धि,
ताकौं असिद्ध कहिए नषिद्धि[1] ॥२७४॥
मुनि धारि रहै तन वस्त्र सील,
निरगृंथ पणौ राषै सुडील।
त्यागण ह्वै जो निज देह प्रांण,
नहि जोग्य वस्त्र गृहणौं[1] प्रमाण ॥२७५॥

चौपई : पंच प्रकार वस्त्र करि हीन[1], जे सजम धर मुनि-तन षीन।
भींटत राषत दर्व्य न हीन, मांनत तिन्है पुरिष परवीन ॥२७६॥
कवहू नेत नहीं मुष सोधि, ठाढे जीमत दयापयोधि।
भेट संघ सौं ले नही रती, ते जग माही साचे जती ॥२७७॥
दीक्ष्या[1] दाता फुनि जु पढावै, आचारादिक गृंथ वंचावै।
दोषरहित गुणसहित जु होई, ताहि गुरू कहिए भवि-लोई ॥२७८॥
मूल संघ गण गछ्छ सुपात्र, जुक्त होय मुनि जैनी मात्र।
सवही गुरु करि मानौं जेह, इनमैं और न करि सदेह ॥२७९॥
पुस्तकसंघ वृद्धि के काज, अलप अजाच्यौ धन रिषराज।
कालदोष करि जे राषंत, तिनकौ दोष नहीं हे संत ॥२८०॥

दोहा : अब फुनि वरसा सैकड़ा, पाछै जाहु सरीर।
तजै न मारिग सर्वथा, जे विवेकधर धीर ॥२८१॥

छंद पधरि : जिह मुनि कौ चित ह्वै सदा सुद्ध[1],
लगि रह्यौ आतमां मैं सुवुद्ध।

---

२७३ २ रहहु।
२७४ : १ निषिद्धि।
२७५ १ गहणौं।
२७६ १ हीण।
२७८ १ वीक्षा।
२८२ १ सुध।

ताकौ नृप वा श्रावक जु होय,
यौं ही करवा समरथ न कोय ॥२८२॥
लषि वस्तिकांनि[1] मैं मुवो जीव,
पंचेंद्री फुनि लोही अतीव।
मुनिवर कौं रे भवि तास मांहि,
पडिकमणौं करिवो जोग्य नांहि ॥२८३॥

चौपई . मुनि दिगंवर जे गुणग्राही, वांचत है सिद्धांत सदा ही।
ते एते दूषन[1] कौं टारैं, तव ही इनके वैन उचारैं ॥२८४॥
वांचत विख्यान वैठत पाटैं, भूमि षेत्र ले सोधिनि राटैं।
ह्वै निरजीव तहां ही वांचै, वहुरि विनय तैं अति ही राचै ॥२८५॥
ते उतकिष्ट[1] मरण कौं करिहैं, सुभ गति मांझि पाव वे धरिहैं।
करत वंदना जव प्रभु काजै, ऊंचे आगुल[2] चवलौ[3] राजै ॥२८६॥
वहुरि समै संध्यारज वरषै, गृहण सु उलकापातहि परषै।
चमकत वीज मेघ वहु गरजैं, तवहूं वाचत नहि मुनिवर जे ॥२८७॥
विनहीं काल सुद्ध हू भाषै, तेहू फल आछे नहि चाषै।
अध्यातम सिधांत आचार[1], गृंथ प्रायश्चित किरियासार ॥२८८॥
विनि विधि वाचन तजौ प्रसंगा[1], फुनि ह्वै कोय विसंघी संघा[2]।
तिन हूं कै संगि वाचत नाही, यह गुर नीकै सीष वतांही ॥२८९॥
करत प्रायश्चित जे मुनि चोषा, साख मांझि देखि वह दोषा।
'माफिक गृंथ प्रायश्चित देणां'[1], घटि वढि देय[2] दोष क्यौं लेणां ॥२९०॥
गणधरांनि की तौ गुर-भक्ति, करि अति नमसकार कै जुक्ति।
मुनि नवींन दीक्षत ह्वै ताहि, वंदन प्रति वंदनां कराहि ॥२९१॥

मुनि सास्त्र-करता नांम-वर्नन

अरिल[1] : भद्रवाहु श्रीचंद वहुरि जिनचंद है,
तिनकी मुनिवर-गन मैं वुधि अमंद है।

---

२८३ · १ वस्तकांनि।
२८४ : १ दूषण।
२८६ · १ उतकृष्ट। २ आगुल। ३ चउलौ।
२८८ : १ आचार।
२८९ : १ प्रसग। २ सग।
२९० · १ 'माफिक दोष प्रायश्चित देणा'। २ देइ।
२९२ . १ छद अरिल।

गृधपछि[२] फुनि लोहाचारिज नाम हैं,
ऐलाचारिज पूजिपाद अभिरांम है ॥२९२॥
वडे कवीस्वर[१] वीरसेनि[२] जिनसैनि[३] है,
इक दस ऐं गुणनदि भले त्तिनु वैन हैं।
सुमतिभद्र श्रीकुभ अवर सिवकोटि ऐ,
कहे सिवायन विस्वसेन जग वोटिऐ ॥२९३॥
गुणभद्राचारिज गुण अधिक विराज हीं,
है अकलंक रु सोमदेव छवि छाजही।
प्रभाचंद अरु[१] नेमचद[२] मुनिराज है,
ऐ ईकईस[३] भऐ गुर धर्म-जिहाज है ॥२९४॥
इत्यादिक जे मूलसंघ-धारक मुनी,
जिनके रचे सासत्रिनि नांचत है दुनी।
तिनके वचननिं वाचि मांनिवो जोग्य है,
जे मानिहि ते जगमैं महामनोग्य है ॥२९५॥

दोहा रचे जु संघाभास मुनि, गृंथ भले भी कोय।
तिनहि वाचिवो मांनिवो, जोग्य नही भवि लोय ॥२९६॥
कारण याकौ यह लषौ, वै कहि मीठी वात।
फुनि लुभाय वह काय कै, निज मत मैं ले जात ॥२९७॥

अरिल[१] : पूर्वाचारिज वचन कहै सो मांनिऐ,
वीतराग के वचनतुल्य वे[२] जांनिऐं।
जानन वाले भविया पंचम काल मैं,
वदनीक ह्वै है गुर परम दयाल मै ॥२९८॥
पहिलै दर्व्य लग कौ धारत है गुनी,
पीछै ह्वै है भाव-लिंगधारी मुनी।
विन दर्वी वह व्रत हू करतौ होय जो,
वंदनीक नहि होय जगत मै सोय जो ॥२९९॥

---

२९२ २ गृद्धपछि।
२९३ १ कवीसुर। २ वीरसेन। ३ जिनसेन।
२९४ १ अरु। २ नेमिचद। ३ इकईस।
२९५ १ सासत्रनि।
२९८ १ अरिल छद। २ वै।
२९९ १ लिंग।

कवित्त : दर्व्य-लिंग कौ स्वरूप[1] यह जांनिऐं अनूप,
विना वस्त्र होय ते दिगंवर[2] कहात है।
सिर डाढी मूछनि के केसनि की लौंच करै,
कांषादिक वाल वचे नजरि जे आत है॥
आभरण नांहि कमडल पीछी हाथ मांहि,
धरै यह रूप सव गृंथनि मै गात है।
दर्व्य है सुभाव ही कौ कारण प्रतक्ष[3] दीसै,
भाव है सु अध्यातम गोचर वतात है॥३००॥

सोरठा : मुद्रा जग मै मांनि, विनि मुद्रा नहि मानि[1] ह्वै।
नृप मुद्रा करि जांनि, लघु नरकौं मांनै वड़ो[2] ॥३०१॥

छंद : यह भेद कहूं प्रतिमां के, लषि काछ आदि कछु ताकै।
वह स्वेतांवरी जु होई, काष्टासघी ह्वै कोई॥३०२॥
ताकौ वंदन नहिं कीजे, परतिष्टा सुद्ध नही जे।
यातैं वंदन वरजी जे, मुनि की विधि ऐ सुनि लीजे॥३०३॥
ह्वै रूप कुलगी वाकौ, वदन न करौ भवि ताकौ।
उपदेस तवै विपरीता, तातै वरज्यौ यह मींता॥३०४॥

दोहा : जिह जिह कारिज तै धर्म[1], वधै सु करै सही सु।
माननीक ह्वै ते जती, निंदन जोग्य नही स[2] ॥३०५॥

छद चाल मुनि पैं मुनि कोई आवै, आदर करि तिंह वैठावै।
प्राघुनिकी विधि कर वांहीं, वढि चालै वरजै नांही॥३०६॥
पाटा पोथी पीछी वै, विन मांगें नांही छीवै।
जव लौं वह संगि रहावै, भिष्या कौं भ्रमण करावै॥३०७॥
यह धर्म निरतर भाष्यौ, मुनि राजनि सो अभिलाष्यौ।
फुनि निज गुर के आंवन की, विधि कंहूं तोहि[1] पांवन की॥३०८॥

---

३०० : १ सरूप। २ दिगंवर। ३ प्रतक्षा।
३०१ : १ मान्य। २ वडे।
३०५ : १ धरम। २ सु।
३०६ . १ छद।
३०८ : १ होन।

गुर आत दूरि तैं देषैं[1], वढि[2] निकटि जाय पद पेषैं।
अनकूल[3] होय मुनि आगैं, करि नमसकार अनुरागैं ॥३०६॥
सेवा तिन की वहु करई, करि सुद्धभाव[1] अघ हरई।
नहि को या धर्म-समांनौं, यह सकल-सिरोमनि जांनौं ॥३१०॥

दोहा. दया करैं गुर सिष्य पै, पुस्तकादि जो देय।
भावसहित दुहूं हाथि[1] लैं, सिषि वदना करेय ॥३११॥

चौपई: जौ लौं मरण करैं जग माहि, वचन दीनता भाषैं नांहि।
आजीवका निमत्ति जे मुनी, धर्म-ध्यांन छाड़ै नहि[1] गुनी ॥३१२॥

दोहा: षुध्या करि ह्वै दूवले, मैलौ होय सरीर।
ऐ भूषण हैं मुनिनु के, लाज मरैं नहि धीर ॥३१३॥
मन करिकै मुनि सुद्ध ह्वै सोही सुद्ध कहाय।
मन विनि तन सुध होत नहि, कोटि सनान कराय ॥३१४॥

छप्पै: कार्य अकार्य विचार जाणते ह्वै सव भाषा।
सर्व सास्त्र कौ अर्थकरण[1] की है अभिलाषा ॥
धर्म तणौं उपदेस दैनवारे[2] मुनिराई।
ह्वै गुणवांन जु कोय ताहि मानौं सव भाई ॥
फुनि होय सुद्ध मुनि निगुण हूं, मुद्रा लषि कै मानिऐं।
श्रावग सु अवग्या साध[3] की मन वच तन नहि ठानिऐं ॥३१५॥

सोरठा: धर्म तणौं व्यौहार, उपदेसी कै आसिरं।
है यातैं यह सार, जोग्य वात तुमकौं कही ॥३१६॥

छंद गीता भक्त विसंघी कौ श्रावक जो भक्ति जुक्ति करि भोजन देय।
भोजन[1] भाड[2] सुद्धता करि कै तहा मुनीस अहार करेय ॥

---

३०६ १ देष्वैं। २ उठि। ३ अनकूल।
३१० . १ भाव सुद्ध।
३११ : १ हाथ।
३१२ : १ नहीं।
३१५ : १ अरथकरण। २ वाले। ३ साधु की।
३१७ : १ भाजन। २ भड।

भंड कहे मांटी के वासण भाजन कांसी पीतल मांनि।
तहां अहार ले न नहि वर ज्यौं दे सो ही वह उत्तिम[3] दांनि ॥३१७॥
श्रावक जो कदाचि अैसो ह्वै भाजन भंड तास घरि सुद्ध।
ह्वै पाषंड़ी निंदनीक अति मुनिजन तै ते[1] धरहि विरूद्ध ॥
ता घरि भोजन करै नही मुनि जे धरमातम हैं गुन-षानि।
महापाप तै भरचौ अंन्न लषि करि निदांन वह छोड़त जानि ॥३१८॥

सोरठा : नहि भीटत सुमरंत, चित्र काठहू की तिया।
तौ साची तिय संत, छुप क्यौं लहै न आपदा ॥३१९॥

चौपई : चित्रहू[1] की तिय भींटी होय, तिंह दिन भोजन करै न कोय।
जीमि चुक्यो ह्वै जो मुनि सत, तौ वेलौ करि दोष हरंत ॥३२०॥
सपरस जिह्वा दीन्हौं दंड़, तिंह करि जग ठांनै पाषंड़।
तातै ब्रह्मचर्य कौं धरै, जती मनुष्य[1] ह[2] गुण आचरै ॥३२१॥
मुनि श्रावक जो सघ मझारि, करै विघन तिंह देहु निकारि।
सर्प डसै जो निज आंगुली, दूरि किऐं सु वचै विधि भली ॥३२२॥
सम्पक दसर्ण[1] करिहू सुद्ध, थोड़ो ही तप करत सुबुद्ध।
ताही तपतै कटिहै कर्म, तातै पालहु समकित धर्म ॥३२३॥
समकित ग्यान चरित को मूल, या विनि मुक्ति न ह्वै अनकूल।
मोषि तणौं निज साधन ऐहु, और नही है भवि लष[1] लेहु ॥३२४॥
प्रतिकमणौं[1] फुनि लौंच करंत, चौदसि आठै आय पड़ंत।
तौ तिथि है सराहिवा जोग्य, इनमै कारिज होय मनोग्य ॥३२५॥
जिह जिह[1] वातां मैं गुण घणौ, ह्वै ताकौं वलवांन सु गिणौं।
या तै सबही तिथि मैं जांनि, चौदसि आठै है अति मांनि ॥३२६॥

---

३१७ : ३ उत्तम।
३१८ : १ जे।
३२० : १ चित्रहु।
३२१ १ मुष्य। २ यह।
३२३ · १ दर्शन।
३२४ : १ लषि।
३२५ : १ प्रतिक्रमणौं।
३२६ १ जिहि।

जिन जनमादिक तिथि फुनि क्रिया, वहुरि महींना सो मुषि लिया।
जोग करण अर वार नषित्र, ऐ प्रधांन मति गिणहु विचित्र ॥३२७॥
चवदा ह्वै घटिका निसि रहई, तव पूर्वान्ह[1] वदना चहई।
दोय घड़ी मध्यान कराही, प्रभु-वंदन करि मन हरषांही ॥३२८॥
च्यारि घडी कौ है अपरांन[1], करि वदना यहै परमांन।
नमैं[2] आवै नजरि नपित्र, तव समायक तजहु विचित्र ॥३२९॥
धर्म-काजि तिथि अधिकी[1] होय, सो ही कांम तणी गिणि लेहु।
आदि अंत मध्य कौ भेद, करि सक्कति तैं तजो विनि षेद ॥३३०॥
जिहि तिथि विषै जु किरिया कीजे, वह किरिया ही मांनि कहीजे।
क्रिया करण कौ ह्वै नहि काल, ग्रामादिक[1] कौं ह्वै जो चाल ॥३३१॥
तौ घटिका ह्वै पहली क्रिया, करि लीजे दूषन नहि भिया।
जो प्रमाद करि भूलि गऐहु, तौ घटि ह्वै पाछै करि लेहु ॥३३२॥

दोहा : दिनि[1] घटिका छह चढि चुकै, तव स्वाध्याय सु आदि।
किरिया सारो कीजियौ, पहलै करहु न वादि ॥३३३॥

चौपई : भाषत ईंद्रनदि मुनिराय, पूर्वाचार्यनु कौ मत पाय।
थोडौ सो मारग यह कह्यौ, जो विस्तार लष्यौ तुम चहौ ॥३३४॥
तौ वनके[1] जो कीन्हे गृंथ, तिन मैं देषि लेहु सुभ पथ।
तीर्थंकर-मत कौ अभिप्राय, सर्व कौंन करि जान्यौ[2] जाय ॥३३५॥
ता तैं वन की[1] आग्या संत, मानैं ते सुष लहै अनत।
या भव पर-भव-फल सुभ पाय, कर्मि-कर्मि सिव पहुचैं जाय ॥३३६॥
ऐसै सौभा करि वह मुनी, इंद्रनदि आचारिज गुनी।
जग माहि जयवंतौ रहै, फुनि कैसौ है सौ कवि कहै ॥३३७॥

कवित्त : परमत-वादी गजघटा दूरि करिवे कौं,
वांनी जाकी जगत मैं सिंघ कै समांन है।

---

३२८ . १ पूर्वाह्न।
३२९ . १ अपराह्न। २ नम।
३३० १ अधकी।
३३१ १ ग्रामातर।
३३३ . १ दिन।
३३५ १ उनके। २ A जोन्यौ।
३३६ १ उनकी।

फुनि वहु जानत पदारथनि के सरूप,
देवनि कै मांनि धारै निमत सुग्यान है ॥
कुंदकुंदाचारिज गुरू के पद-सेवन तैं,
आगम आचार गृंथ मांझि सावधांन हैं।
वै ही इद्रनंदि रच्यौ संसक्रत नीतिसार,
भाषा वषतेस करी ताही कै प्रमांन है ॥३३८॥

अथ विसंघ उतपति-वर्नन

दोहा : यां ही मत्त[1] मै नीसरे, संघ जिते जो और।
तिनहूं की उतपति वहुरि, सुनहु ठिकांनौं ठौर ॥३३९॥
आभा यन मैं पाइयतु[1], कछुक यक[2] जैन प्रकास।
ता तै इनकौं मुनिनु मिलि, भाषे जैनांभास ॥३४०॥

अथ संघ-नांम-वर्नन

दोहा : इक स्वेतांवर सघ फुनि, दूजौ द्रावड़ जानि।
ज्यापनीय अरु कासटा, निपछ पंचमौं मांनि ॥३४१॥
तिन मैं तै जे नीकसे, मत कितेक हठ ठांनि।
तिनहूं की आगै कछू, कहिहौं कथा वषांनि ॥३४२॥
निकसे स्वेतांवर पथम, जे जे ठानी रीति।
कहौं गृंथ अनुसार तै, सुनिऐ भवि करि प्रीति ॥३४३॥

अथ भद्रवाहु चरित्रे न उक्तं

दोहा : भद्रवाहु के चरित मै, जे भाषी मुनिराय।
सौ सव वाही गृथ की, भाषा धरी वनाय ॥३४४॥
गोवरधन मुनि कै भये, भद्रवाहु सिषि सार।
पाठी ग्यारह अंग के, चवदस[1] पूरव धार ॥३४५॥
तिनकै सगि सदा रहैं, मुनि चौवीस हजार।
नगर अवंती कै निकटि, मालव देस मझार ॥३४६॥

---

३३९ . १ मत।
३४० : १ पायइतु। २ यक।
३४५ . १ चउदस।

या नगरी उजेणि कौ, चद्रगुप्ति[1] नृप नाम।
धर्म-ध्यांन मैं निपुन निज, वहुरि देस पुर ग्राम ॥३४७॥
एकै निसि सोलह स्वपन[1], लषे जवै महाराजि।
आय सवै मुनि कौं कहे, फल पूजन[2] कै काजि ॥३४८॥
भद्रवाहु भाषी नृपति, फल सुनिऐ चित लाय।
आवत इँह अव[1] काल मैं, अैसें ह्वै है राय ॥३४९॥

सोलह स्वपन[1]-वर्नन[2]

छंद गीता : स्वर-वृक्ष की साषा षिरत देषी स्वपन मैं भूप,
फल यह सुनौं आगै नृपति दीक्या धरै न अनूप।
सूरिज लष्यौ जव अस्त होत सु काल पचम माहि,
मुनिराज ग्यारह अंग चौदह पूर्व धर ह्वै नाहि ॥३५०॥

दोहा : चन्द्र जु देष्यो छिद्रजुत, ताकौ फल यह जानि।
जिन-मत मांझि अनेक मत, फटि हैं लीजे मानि ॥३५१॥

छंद गीता : तुम सर्प[1] वारह फण तणौं, देष्यो अहो भूपाल।
फल लषहु वारह वरष कौ, पड़ि है वहुर भषि-काल ॥
उलटौ विमांन जु लष्यौ, जात सु रहै पंचम काल।
ता मे विद्याधर स्वर[2] मुनी, चारण न आवहि हाल ॥३५२॥
ऊग्यौ लष्यौ रौड़ीकमल सो, वैस्य जिनकौ धर्म।
पालि है फुनि छत्री[1] सु, व्रांह्मण तजै जिन आसर्म ॥
नांचते देखे भूत सो नर से यहैं स्वर[2] नीच।
आग्या तणौं देष्यो उद्योत सु जिन धरम कै वीच ॥३५३॥
उपदेस जिन-भाषित करन वारे कहुं कहु होय।
मिथ्यत जै है फैलि सो यामैं न ससय कोय ॥
देष्यो सरोवर वीच मैं सूको सु पाणी अत।
फल सुनहु जन्म कल्यान आदि सुषेत्र जानि महत ॥३५४॥

---

३४७ १ चद्रगुपति।
३४८ १ सुपन। २ बूझन।
३४९ १ अव इह।
३५० १ स्वप्न। २ फल बर्नन।
३५२ १ सरप। २ सुर
३५३ १ षित्री। २ सुर।

सो ही जु तीरथ जांनि फुनि जैनी न ह्वै तँह कोय।
जिन-धर्म दक्षिण दिसि रहैगौ जाय हे भवि लोय॥
कूकर कनक के थाल मै षातौ लष्यौ तै षीर।
फल जांनि छोटी जाति लषिमी[1] वांन ह्वै हैं वीर॥३५५॥
गज परि[1] लष्यो मरकट चढ्यो फल यहै कुल जे हीन।
ह्वै भूप तिनके दास उत्तिम कुल तणें ह्वै दीन॥
मरजाद तजत लष्यो उदधि सो अब जु ह्वै भूपाल।
अन्याय करि लछिमी सवनि की हौं हि घूटनवाल[2]॥३५६॥
वहु वोझ कौ रथ वाछड़े षेंचते देषे सुद्ध।
फल तरुण वर्क्षादिक[1] करै नहि करै जे ह्वै वृद्ध॥
सुत लष्यो नृप कौ चढ्यो ऊट[2] सु फल जिके नृप लोय।
निज धर्म तजि हिंसादि-कर्म सु करहिं लज्जा षोय॥३५७॥
देषी ढकी[1] नृप धूलि तै रतनां तणी जो रासि।
फल मुनी आपस मांहि करि हैं ईरषा परकासि॥
फुनि जुद्ध-काले गजनि कौ देष्यो सु फल ये मेघ।
नहि वृष्टि मनवंछित करैं रहिवो करै उद्वेग[2]॥३५८॥

दोहा . फल यम सोलह सुपिन कौ, सुनि नृप भये उदास।
चित वैराग विचारि कै, दीक्ष्या[1] ले मुनि पासि॥३५९॥
रहन लगे सव संग ही, करत[1] तपस्या घोर।
फुनि जु भई सो हू सवै, सुनहु कथांनक और॥३६०॥
ऐकैं दिवसि अहार कौं, श्रावग कै घरि जाय।
तहां एक अचिरज[1] लष्यो, भद्रबाहु मुनिराय॥३६१॥
लरिका देष्यो पालनै, वोलन की विनि सक्ति।
जाह जाह औसे कही, ह्वै मुनि अचिरज-जुक्ति[1]॥३६२॥

---

३५५ १ लषमी।
३५६ १ पर। २ लूटनवाल।
३५७ १ वरतादिक। २ ऊंट।
३५८ १ लषी। २ उववेग।
३५९ १ दीक्षा।
३६० : १ कर।
३६१ १ अचिरिज।
३६२ . १ जुक्त।

बूझी लरिका तें मुनि, याकी अवधि बताय।
लरिकै फुनि[1] मुख तें दये, बारह बरष जताय[2] ॥३६३॥
अंतराय करि कै फिरे, उलटे ही मुनिराय।
आये बन मैं संघ-मधि, करत विचार सुभाय ॥३६४॥

चौपई : ताही समये निमत विचारी, भद्रबाहु बोले तिह बारी।
सब ही मुनि सुनिये गुनपाल, परिहै बारह बरष दुकाल ॥३६५॥
ता तें दक्षिण दिसि कौं चलै, वा दिसी धर्म सधैगो[1] भले।
तब बनमैं[2] तें आधे मुनी, साची मांनी जो गुर-भनी ॥३६६॥
तिन मैं भद्रबाहु अनगार, दूजे चन्द्रगुप्ति[1] ह्वै लार।
ऐ तौ द्वै उद्यांन[2] बन गये, लषि इक गुफा तास ढिगि रहे ॥३६७॥

दोहा : भद्रबाहु तौं अवधि लषि, लियो सकल सन्यास।
तप करि काल षियावहीं, करि करि कै उपवास ॥३६८॥

चौपई : तहां करत दोऊ उपवास, काल षिपावत धारि हुलास।
फुनि मुनि भद्रबाहु यह कही, जो पुर ग्राम[1] नगर ह्वै नही ॥३६९॥
तौ अहार कौं बनि मुनि जाय, जोग मिलै तौ तहा कराय।
अैसे कही जिनागम माहि, सो हू करिये दूषन नाहि ॥३७०॥

सोरठा : यह सुनी गुर के बैन, चद्रगुपति बन जात निति।
तब अहार कौं दैन, बन देवी इक आय करि ॥३७१॥
कबहू भोजन ठांनि, अंतरीछि वह ह्वै गई।
कबहु अकेली आनि, बैठी भोजन दैन कौं ॥३७२॥
इँह विधि लषि मुनिराय, अतराय करि करि फिरे।
तप किय मन वच काय, काहू भाति चिगे नही ॥३७३॥
गाढ परीक्षा माहि, लषि देवी नगरी रची।
तहा अहार कराहि, मायामय श्रावगनि कै ॥३७४॥

---

३६३ १ फिरि। २ बताय।
३६६ १ सधैगो। २ उनमैं।
३६७ : १ चद्रगुपति। २ उद्यान।
३६९ १ ग्राम।

फुनि कछु काल षिपाय, भद्रबाहु सुरगनि गये।
गुर-पादि[1] कराय, चंद्रगुप्ति[2] पूज्यो करै ॥३७५॥
कबहु अहारहि जात, कब हू वपवास हि करै।
तप करि कर्म षियात, इम वीते बारह बरष ॥३७६॥

चौपई : और विसाषाचारिज आदि, सिषि हजार बारह कछु वादि।
सब ही दक्षण दिसि कौं जाय, पाल्यो धर्म सु मन वच काय ॥३७७॥
वीतै अवधि विसाषाचारिज, संघ जुत जहां पादिका-वारिज।
आय पूजि पादिका जुपति[1] सौं, चंद्रगुपति मुनि मिले भगति सौं ॥३७८॥
बूझी तुम अहार किह रीति, वन मै लेत कहौ करि प्रीति।
चद्रगुपति कही नगर वसंत, वन मैं तहां अहार करंत ॥३७९॥
फुनि जे आये मुनि विनि वास, तिनु तिह दिन कीन्हौ वपवास[1]।
दिवसि पारणे कै अनगार, किते गये पुरि लैन अहार ॥३८०॥
तिन मैं यक[1] पीछो धरि तरु पै, लेय अहार गयो वन गुर पै।
यादि आ गई पीछी जब ही, उलटौ लैन चल्यो वह तब ही ॥३८१॥
तरु परि पीछी लषी महांन, लष्यो न पुर कौ आही ठांन।
तब यह वात सबै गुर पासि, आय[1] कही जिम भई प्रकासि ॥३८२॥
बोले गुर तुम विना विचार, लीन्हौं मायामई अहार।
पै तुम चद्रगुपति धनि मुनी, गाढे रहे धर्म मै गुनी ॥३८३॥
तुम्हरौ लषि कै गाढ अपार, देवि जुक्ति सौं दयो अहार।
पै याकौं यह प्राछित भयो, सो तुम मुनि-पद धारो[1] नयो ॥३८४॥
करि छेदोपसथापन नवै[1], दीक्षा लीजे फिरि तुम अवै।
तब ऐ गुर के उर धरि वैन, दीक्ष्या[2] चंद्रगुप्ति लई अैन ॥३८५॥

---

३७५ १ पादिका। २ चद्रगुपति।
३७८ १ जुगति।
३८० १ उपवास।
३८१ १ इक।
३८२ १ आई।
३८४ १ धारौ।
३८५ १ जबै। २ दीक्षा।

और मुनी जे लारैं गये, तिनहूं सबनैं प्राछित लये।
जथाजोग्य गुर-आग्या पाय, तप कीन्हौं तिनु मन वच काय ॥३८६॥

दोहा : नही गये दक्षिण दिसा, रहे यहां मुनि संत।
थूलभद्र फुनि रायमल, इन दै आदि महंत ॥३८७॥

चौपई : रहे मुनी जे विना विचार, यही मालवा देस मझार।
दुरभष्य पड्यौ सु ससय नाहि, अति भयभीत भये मन मांहि ॥३८८॥
नगरी मैं अहार कौं जाय, भूषे मनिष लगैं तहां आय।
करि अहार यक मुनी निसंक, आवत लषि दौरे वहु रंक ॥३८९॥
सव मिलि वाकौ पेट विदारि, षायो काढि जु लयो अहार।
तव श्रावकनि सुनी यह वात, कंपन लगे जानि उतपात ॥३९०॥
जाय मुनिनु सौं विनती करी, अहो सुनहु हम यह चितधरी।
लाठी पात्रा राषो हाथि, ले अहार जावो मिलि साथि ॥३९१॥
वन मैं भोजन करिये भले, तौ ऐ रंक टलैं तौ टलैं।
अैसैं हू कितेक दिन कीन्ह, तौ हू रंकनि अति दुष दीन्ह ॥३९२॥
तव फिरि पचन मिलि यम कही, निसि भोजन ले जावो सही।
प्रातः अहार करो मुनिराज, सीत उक्ष्म[1] की करहुं[2] न लाज ॥३९३॥
अैसे करत ऐक निसि मुनी, आऐ इक श्रावग कैं गुनी।
डरि इक तिय राक्षस-सम हेरि, गर्भ गिरयो ता को तिह वेरि ॥३९४॥
यह फुनि सुनि पंचनि मिलि आय, करि मुनिनु तैं अरज सुभाय।
हे महाराज्य सुनौ अव ऐहु, आधो आधो कंम्मल लेहु ॥३९५॥
सिर परि धारो वेठो ताहि, तौ हमरो यह दुष मिटि जाहि।
तव अैसे ही वनु मिलि करी, मरजादा सव ही परहरी ॥३९६॥
सव मिलि करी न काहू चैहरयौ, तव तैं अर्धफालक-मत ठैंहरयो।
या विधि सौं अहार ले जांही, वन मैं सीलौ[1] भोजन षाही ॥३९७॥
तौहू रक वहां[1] चलि जाय, दुष दे षोसि अहारहि षाय।
तव श्रावकनि यहू विधि सुनी, विनयें तुम दुष पावत मुनी ॥३९८॥
गये नगर मैं तिनहि लिवाय, ठौंहर सवको दई बताय।
पांच सात मिलि इकठां रहैं, भोजन विहरि ल्यात जो चहैं ॥३९९॥

---

३९३ १ उष्ण। २ करौ।
३९७ : १ सीलो।
३९८ उहां।

जुड़ि किवाड़ सव मिलि जीमंत, सो विधि चली जात अवसंत ।
वारह वरष विताये येम, फुनि आये मुनि धारी नेम ॥४००॥
दषिण तैं जु विसाषाचारिज, मुनि दै आदि करत सुभ कारिज ।
तिन पै थूलभद्र फुनि सव मिलि, सिक्षि एक कौं कही जाहु चलि ॥४०१॥
देषहु चलन धर्म सव वनकौ[1], ज्यौं ससय भाजै सव मन कौ ।
वह सिषि गयो मुनिनु कै यांही, करी वंदना मन हरषांही ॥४०२॥
वनु[1] प्रति वंदन कीन्ही नांही, वह वलटौ आयो वन[2] यांही ।
सवै हकीकति वनकी[3] कही, थूलभद्र वोले तव यही ॥४०३॥
प्राछित ल्यौ गुरभाषित सवै, करि छेदोपसथापन अवै[1] ।
सव ही मिलि कै दीक्ष्या[2] लेहु, यहां रहे सो विनि सदेहु ॥४०४॥
तव सव कही अवै मुनि-ईस, सहि न सकै प्रीसह वाईस ।
तिनके नाम वहुरि विधि सुनौ, कैसैं सहैं सु तुम हीं भनौ ॥४०५॥

सोरठा :

षुध्या त्रषा[1] अरु सीत, उक्ष्म दंस मंसक वहुरि ।
नगनपनौ अति भीत, ऐ षट कैसे सहि सकै ॥४०६॥
अरति परीसह जांनि, घर सूने मधि ध्यान दे ।
जीवदया जिय ठांनि, पिछले भोग न चिंतवै ॥४०७॥
स्त्री-परीसह ऐह, सहस अठारा वाड़िजुत ।
सील धरै निज देह, तिय निरषन वोलन तजै ॥४०८॥
चर्या यह तू जांनि, चलै पयादे मग निरषि ।
कंटक भागै आंनि, तौहू रहैं उवांहने ॥४०९॥
निषद्या है यह ठीक, चले जात रवि अस्त ह्वै ।
तिह ठांही तैह तीक, वैठी जांहि निसि वीर मुनि ॥४१०॥
सज्या-परीसह जोय, ह्वै धरती कंकर तणी ।
ऊंची नीची होय, तापै सोवै निसक मुनि ॥४११॥
यहै जानि आक्रोस, मरमछेदि निंदा करै ।
नाहक दे को दोस, क्रोध न करै सवै सहै ॥४१२॥

---

४०२ · १ उनकौ ।
४०३ १ उनु । २ उन । ३ उनकी ।
४०४ १ सबै । २ दीक्षा ।
४०६ . १ त्रिषा ।

वध जु सस्त्र की घात, करै कोय सो सब सहै।
यह जाचनां विख्यात, काहू पै मांगै नहीं ॥४१३॥
यह अलाभतू जांनि, भोजन जबै मिले नहीं।
तब मन मैं दुष आंनि, कोप विलाप करै न मुनि ॥४१४॥
रोग-परीसह ऐह, महारोग करि ग्रस्त ह्वै।
जो अपनौं निज देह, तौ करिवो न कहै जतन ॥४१५॥
त्रिण सपरस सुणि मित त्रिणां वहुरि कटक अधिक।
लगै देह कै संत, टालै नांहीं दुष सहैं ॥४१६॥
मल-प्रीसह सुनि जांन, लागै मैल सरीर कै।
तऊ न करै सनांन, वाकौं भूषन-सम गिनै ॥४१७॥
पुरसकार सतकार, ऐक जांनि को काज मै।
विनय न करै लगार, तौ अपमांन सहै मुनी ॥४१८॥
प्राया[1] सुनहु सुजांन, आप पढ्यो ह्वै वहुत जो।
तौ न करै अभिमांन, सांत-भाव राषै सदा ॥४१९॥
यहै कहैं अग्यांन, जो निज होय प्रवीन अति।
क्रोध न करै प्रमान, जो कोऊ मूरिष कहै ॥४२०॥
यहै अदरसण ठीक, ग्यांनवांन निज तप करत।
रिधि नहि होय नजीक, तौ न विचारै वात यह ॥४२१॥
मैं अैसो तप कीन, तौ हू रिद्धि[1] न उपजी[2]।
यह न विचारै दीन, तप दीक्ष्यादिक झूठ है ॥४२२॥

दोहा : अहो हमारे नाथ तुम, थूलभद्र मुनिराय।
हम तै ऐ प्रीसह अवै, सही कौंन विधि जाय ॥४२३॥

चौपई . तव वन कही ये पेट तौ भारी[1] हौं, अगिलै जनम नरकि ही परिहौं।
यह सुनि सव मिलि वात न मानी, वा सौं वुरी करी मन मानी ॥४२४॥
वह मरि प्रेत भयौ सव जांन्यौं, सवकौं दुष दीन्हौं मन मान्यौं।
तव वा सौं मिलि विनती कीन्ही, तुम दुष देत सु सव हम चीन्ही ॥४२५॥

---

४१९ १ प्रग्या।
४२२ १ रिधि। २ ऊपजी।
४२४ १ मरि।

अब हम ऊपरि किरपा कीजे, जिह विधि चलैं सु चलिवा दीजे।
तौ हम पाय पूजि निति तुम्हरे, जीमै हौ तुम सतिगुर हमरे ॥४२६॥

दोहा : जब तै पूजत प्रथम ऐ, धरि पाटी परि पाय।
कोऊ अस्ति वतांवहीं, पूजत मन वच काय ॥४२७॥

चौपई : अर्धफालक सब देसनि मांहि, फैल्यो मत यम संसय नांहि।
ऐसै काल वितीतौं घणौ, वरष सैकड़ा फुनि तुम सुणौ ॥४२८॥
भऐ उजेणी विक्रम भूप, माता पद्मावती[1] अनूप।
गंध्रवसेन पिता तसु जांनि, हौ विद्याधर वह गुनषांनि ॥४२९॥
विक्रम प्राकर्मी चहु धनी, धर्मवांन दांनी वहु गुनी।
तिनु वुलाय पंडित रिष सवै, नमि विनती म[1] कीन्ही जवै ॥४३०॥
संवत्त नयौ चलावन तनौं, मेरै भाव उपज्यौ घनौं।
वै वोले झगरौ पाछिलो, मेरै[1] संवत चलि है भलौ ॥४३१॥

दोहा : लैन दैन वोरन कौं, धन दै कलहि[1] मिटाय[2]।
तिह विक्रम भूपति नयौ, संवत दयो चलाय ॥४३२॥

चौपई . फुनि विक्रम तौ सुरपुरि गऐ, केते वरष वहुरि वीतऐ।
वरष ऐकसौ भऐ छतीस, तवै वजेणीं[1] भऐ महीस ॥४३३॥
चंद्रकीर्ति हौ ताकौ नांम, चंद्रसिरी भई ताकी वांम।
तिनकै सुंदर पुत्री भई, नांम चंद्ररेषा गुनमई ॥४३४॥

दोहा . ताहि पढाई भूप वन, अर्धफालकनि पासि।
सांतिकीर्ति कौ सिष्य हुतौ, जिणचंद नाम प्रकासि ॥४३५॥
सौ तौ कनवज देस कौं, गऐ सु ताहि पढाय।
फुनि कन्यां जोवनसहित, देषी जव ही राय ॥४३६॥
सुन्दर सोरठ देस मैं, वलभा नगरी जांनि।
प्रजापाल नृप कै तिया, प्रजावती गुनषांनि ॥४३७॥

---

४२९ : १ पदमावती।
४३० : १ इम।
४३१ . १ मेटै।
४३२ . १ कलह। २ मिटाइ।
४३३ . १ उजेणीं।

लोकपाल ताकौ नतय, ताहि दई परणाय।
ससिरेषा कन्या वहै, हय गय दै बहु चाय ॥४३८॥
प्रजापाल सुरगनि गयौ, लोकपाल हुव राज।
काहू दिनि अति प्रस्न[1] लषि, तिय बोली तजि लाज ॥४३९॥
अहौं भूप मेरो[1] जु गुर[2], है कनवज कै देस।
ताहि बुलाय यहां अवै, कीजे[3] भक्ति विसेस ॥४४०॥
नृप मन्त्री नु षिनाय करि, लीनें तिन्ह[1] बुलाय।
साम्हें चाले भूप हू, ल्यावन कौ चित चाय ॥४४१॥
लषि वन कौ वह रूप जब, नही वस्त्र कछु[1] पासि[2]।
नही दिगांवर[3] रूप यह, नृप तब भऐ उदास ॥४४२॥
विचि ही तें आऐ सु उठि, वन पै गऐ न राय।
तब नृप कौ राणी सबै, जांनि लयौ[1] अभप्राय[2] ॥४४३॥
मंत्रिनु कौं षिनवाय करि, राणि वन कै पासि।
स्वेत वस्त्र लाऐ तिन्है, बहु विधि करि अरदासि ॥४४४॥
तब नृप साम्हे जाय फुनि, ल्याऐ नगरी माहि।
भक्ति करी जिणचद की, भाव-सहित अधिकांहि ॥४४५॥
तब तें मत ठहरयौ यहै, स्वेतावर[1] सु कहात।
भद्रवाहु के चरित मैं, भाषी है यह वात ॥४४६॥
फुनि चौदह उपकरण ऐ, नऐ नऐ ठहराय।
यनके[1] मत के जतिनु कौं, राषन दऐ बताय ॥४४७॥

उपकरण-नांम

दोहा : राषौ तीन पछेवड़ी, बहुरि धोवत्ती तीन।
तीन पातरा काठ के, लाठी ऐक नवीन ॥४४८॥
वोघा दोय जु ऊंन के, ऐक मौंहपती जोरि।
पात्रा कै मुषि वाधणी, ऐक तर्पणी डोरि ॥४४९॥

---

४३९ १ प्रश्न।
४४० १ मेरे। २ जगुरु। ३ कीज्ये।
४४१ : १ तिनहि।
४४२ १ कछू। २ पास। ३ दिगंबर।
४४३ १ लियौ। २ अभिप्राय।
४४६ १ स्वेतांबर।
४४७ : १ इनके।

ऐ सब चौदह उपकरण, राषण मै नहि दोष।
अैसें कहि सबकौं कियौ, मत स्वेतावर पोष ॥४५०॥
नऐ बनाऐ गृंथ बहु, आगम[1] बहुरि सिधांत। -
तिनमै भाषे सो कछुक, सुनिऐ भवि विरतांत[2] ॥४५१॥

चौपई : जनम कल्यानक पूजा करैं, आंगी रचि जग कौ मन हरैं।
देहुरांनि कौ चलन मिटाय, उपासिरा दीन्हे ठहराय ॥४५२॥
प्रतिमां प्रभु की थापैं जहां, जुड़ि किवाड़ भोजन ले तहां।
फुनि गृंथनि मै जो विपरीति, भाषी सो सुनिऐं करि प्रीति ॥४५३॥

सोरठा : ऐ चौंरासी बोल, नऐ सथापे वहसि करि।
तिनकी कथा कलोल. कछु यक यह वर्नन[1] करूं[2] ॥४५४॥

अथ चौरासी बोल परि हेम क्रत छंद छपै[1]।

कवित्त : केवली अहार करै मानै तिन्है लागत है,
दूषन अठारै परमाद महा मोहिऐ।
मोह के विनासकारी वीरज अनंत धारी,
जिन्हैं भूष लागै अैसै कहत न सोहिऐ॥
भुजत अनंत सुष भोजन तै कौंन काज,
आदित कै उदै कहौ कहा दीप वोहिऐ।
काहू परकार इनकै न कवँला अहार,
जे कहै है तिनके जग्यौ है ग्यांन को हिऐ ॥४५५॥
मोहनी करम नांसै वेदनी कौ वल नांसै,
विसकै[1] विनासै ज्यौ भुजंगम की हींनता।
इंद्रीनि के ग्यांन सौं न सुष दुष वेदै जहां,
वेदनी कौ स्वाद वेदै इंद्रीनि की षीनता॥
आतमीक अतर अनंत सुष वेंदै जहां,
वाहरि निरतर है साता की अछीनता।

---

४५१ १ आगम। २ विविरतात।
४५४ . १ वरनन। २ करौं।
४५५ १ missing।
४५६ . १ विसकौं।

तहां भूष आदिक असाता कहां वल करै,
विष कणि कान करै सागर मलीनता ॥४५६॥
देव मानसी कही अहार तै अपति[1] होय,
नारकीक जीवनि कौ कर्म कौ अहार है।
नर तिर जच कै प्रगट कवला अहार,
ऐक इंद्री धारक कै लेप कौ अधार[2] है॥
अड़े की विरिधि ह्वै उजाआहार[3] सेवन तै,
पंषी उर[4] ऊंषमा तै ताकी वढ वार है।
नौ कर्म वर्गनां कौ केवली कै है अहार,
देह अविकार कहै जो न सविकार है॥४५७॥

दोहा : और जीव कै लगत नहि, तन पोषक सुषदाय।
समय समय जगदीस कै, लगै वर्ग नां आय॥४५८॥

छप्पै : षुध्या त्रषा[1] भय दोष रोग जर मरण जनम मद।
मोह षेद पर स्वेद नींद विसमय चितागद॥
रति विषाद ऐ दोष नांहि अष्टादस जाकै।
केवल ग्यांन[2] अनत दरस सुष वीरज ताकै॥
नहि सप्त धात सव मल रहित परमो दारिक तन सहित।
अंतर अनंत सुष रस सरस सो जिनेस मुनिपति महित॥४५९॥

दोहा : कलप[1] विकलपी कहत हैं, और दोष विकराल।
निरमल केवल नाथ कै, है निहार मल जाल[2]॥४६०॥
जाहि अहार वनै नही, तँह क्यौं होय निहार।
परगट दूषन देषिऐ, इसमै कौन विचार॥४६१॥

चौपई : जे मुनि तपति रिद्धि के धारी, गहत अहार हिये न निहारी।
कहि क्यौं सकल जगत कौ स्वांमी, करै निहार अमल पद गांमी॥४६२॥

---

४५७ : १ त्रिपति। २ प्रकार। ३ उजाहार। ४ वर।
४५९ . १ त्रिषा। २ ज्ञांन।
४६० . १ कलपि। २ लाज।

दोहा : जाकौं देषि मिटै विकट, घोर उपद्रव वरग[1]।
दोष दोय ताकै कहै, रोग और उपसर्ग ॥४६३॥

कवित्त : कहै कोऊ क्रोधसाला[1] हुवौ है गोसाला मुनि,
तिन तै ज्वाला-माला छूटी परजलती।
वीर के समोसरन दहि मुनि दोय तिन,
ताकी भल स्वामी हूं कौ पहुंची उछलती॥
तहां भयौ उपसर्ग ताही ऊषमां तै फिरि,
उदर की व्याधि भई आंम लोहू चलती।
परगट दोष जानि तजै अैसो सरधांन,
ग्यानवांन जिनकै सु जोति जगी बलती ॥४६४॥

दोहा : जनमत ही मति श्रुति अवधि, तीन ग्यांन घट जास।
कहैं पढ्यौ चट साल स्यौं, वर्द्धमान गुनवास ॥४६५॥
कहैं और सितवास मत, जब जिन होय विराग।
एक वरस लौं दान दे, अंत करै घर त्याग ॥४६६॥
जिन वैराग्य दसा धरत, त्यागे सब परभाव।
कहा जानि अपनौं करै, पाछैं दान बताव ॥४६७॥
धरी दिगंवर जिन दसा, पाछैं अंवर आनि।
ईंद्र धरै जिन कंध पर[1], यह संसय मति मांनि ॥४६८॥

चौपई छंद गणधर विनां वीर की वांनी, निफल षिरी नही[2] काहू मानी।
वेसरि[1] : समकित वृत का भया न धारी, कोऊ तहां कहै सविकारी ॥४६९॥

दोहा वांनी षिरयन[1] षिर यतौ, होय सफल तैहकीक[2]।
षिरै फल विनां जे कहैं, तिनकी वात अलीक ॥४७०॥

अरिल : लोकनाथ सौ जिनवर जाकौ पूत है,
तिस माता कौ कहैं और परसूत है।

---

४६३ १ वर्ग।
४६४ १ क्रोधसला।
४६८ १ परि।
४६९ : १ Missing। २ नहि।
४७० : १ षिरैन। २ तहकीक।

आदिनाथ कौं प्रगट कहत हैं जुगलिया,
तिनकौं ही फिरि कहैं भये ते पति तिया ॥४७१॥

चौपई : कहै जुगलिया कोऊ मूवो, ताको तिय हि रड़ायो हूवो।
सोही रिषभदेव धरि आनी, भई सुनंदा दूजी रानी ॥४७२॥

सोरठा : कराहिन[1] निदक[2] काजु, जो सांमीनि[3] के होय जन।
क्यौं[4] करि श्री जिनराज, करैं अकारिज विधि करम ॥४७३॥

छप्पै : कोऊ कोऊ कहै रिषभ थौ विप्र तास तिय।
देवा नंदा तासु गर्भ जिनवीर अवतरिय ॥
दिन अस्सी अरु तीन लयो प्रभू वास तहां हीं।
तवैं ईद्र यह वात विचारी है मन माही ॥
हीन जाति द्विज कुल विषै, महा पुरष अवतार।
जोग्य नहीं तातैं करौं, और गर्भ संचार ॥४७४॥

सोरठा : दियो[1] ईंद्र आदेस, हिरन गवेषी देव कौं।
करवायो परवेस प्रभु, त्रिसला के गर्भ मैं ॥४७५॥

चौपई : पहिलै गर्भ क्यौं न हरि लीनौं, गएँ तियासी दिन क्यौं कीनौं।
पहिलै का जानत हो नाहीं, कहौ विचारि धारि मन मांही ॥४७६॥

अरिल : दुज घरिवा सिद्धारथ घरि प्रभु संचरयौ,
गर्भ कल्यांनक कहौ कहां जिन कौ करयौ।
जो द्विज घरि भौ होय हीनता ईस की,
सिद्धारथ घरि न वनै क्रिया जगीस की ॥४७७॥
द्वै दोन्यो घरि तौ कल्यान कछह गनौं,
जो दोन्यौं कै न हितौ च्यारयौं ही भनौं।
सील भंग तौ होय जिनेश्वर मात का,
यातैं वीरज नाहि सिधारथ तात का ॥४७८॥

---

४७३ . १ करहिन। २ निंदिक। ३ सामानि।
४७५ . १ दयो।

चौपई : जहां वात का नांहि नवेरा, तिह[1] कलपित करि कहै अछेरा।
अैसी वांनी मूंढ वषानै, दरसन मोह लीन सरधांनै ॥४७९॥

दोहा : पंच कुमार जिनेस हैं, सत्यारथ मत मांहि।
मल्लि नेमि एई कुमर, कहैं द्वै अवर नांहि ॥४८०॥

तीर्थंकर जिन कौ नमैं, सांमांनिक जिनिराय।
कहै बाहुवलि केवली, नमो वृषभ[1] के पाय ॥४८१॥

कवित्त[1] : अरिहंत पद वंद्य[2] वंदक सरूप मेरो,
अैसे भाव परमाद गुनतांई वहै हैं।
सातमी धरातै आगै आतमी[3] करस जागै,
तहां वंद्य वंदक विभाव नाहि रहै हैं॥
साधक दसा मै जहां वाधक है अैसा भाव,
तहां जिन जिन वंदै मंद वुधी[3] कहै हैं।
परवा सरूप धारी वीतराग अविकारी,
वंदनीक एकै मानी ग्यांनीसर दहै हैं ॥४८२॥

सवैया[1] : केवल ग्यांन विषै ज्यन वीर कहैं अनजांनै अचांनक छीक्यौ।
सो न वनै जव छींक उठै जव वात कफा मय व्यापत जी कौं॥
धातु विवर्जित निर्मल ईस सरीर विषै नही रोग रती को।
छींक कलंक अटंकित अंकित शुद्ध दसा तहां दोष नहीं को ॥४८३॥

अरिल : तिरदडी तापसी कुलिंगी भेष सौं,
आवत सुनि जिन वीरनाथ उपदेस सौं।
गोतम स्वांमी गणधर वृतधर जैन कौ,
ताकै सनमुषि[1] गयो भगति सौं लेन कौं ॥४८४॥

दोहा : धारक संम्यक दरसनी, करै न कुमती मांन।
क्यौं करि गणधर पूज्य पद, करै सुभक्ति विधांन ॥४८५॥

---

४७९ : १ तंह।
४८१ . १ रिषभ।
४८२ : १ सवैया। २ आतमीं। ३ बुद्धी।
४८३ : १ सवैया २३ सा।
४८४ : १ सनमुष।

जाकी सोलह स्वर्ग तैं, आगे नांहीं गंम्य।
तिस नारी कौं यौं कहैं, रमैं मोष्य पद रंम्य ॥४८६॥

कवित : जाके सब मलद्वार धारें है निगोदि भार,
कवहू न अविकार हिंसा तैं रहत हैं।
सिथल सुभाव लियें परपंच सच कियें,
लाज कौ समाज धरै अंवर चहत हैं॥
छठे गुण थांन मांहि थिरता न ध्यांन माहि,
मांस मांस रितु ताहि सकता लहतु[1] हैं।
जगत विलविनी कौं हीन दसालविनी कौं,
यातें ही नितविनी को मोषि न चहुत हैं ॥४८७॥

दोहा . मुक्ति कांमिनी कौं रमैं, एकं पुरिष विसेष।
रमै न कामिनि कांमिनी, यह परगट ही देष ॥४८८॥

अरिल दोहा[1] समय विरोधी देषिऐ, परगट वितथ विचार[2]।
मल्लिनाथ जिनकौं कहैं, मली कुमारी नारि ॥४८९॥

अरिल : सुरग भूंमि पाताल लोक मैं देषिये,
नारी नाथ सुनी कवहू न विसेषिये।
जगत वंद्य अरहंत[1] देव पद क्यौं धरैं,
नर अधीन जो हीन निंदि पद आचरै ॥४९०॥

चौपई . जो नारी कौं नर पद मांनौ, तो ताकी प्रतिमा किन ठानौं।
पुरिष अकार एक ही वंदौ, नारी रूप क्यौं न अभिनदो ॥४९१॥
जो नितविनी विंव न सोहै, कुच रूपादिक मडित होहै।
तौ लज्जा करि कामनि रूपी, क्यौं करि जिनवर होय अरूपी ॥४९२॥

दोहा जाके दरसण[1] परस तैं, रागादिक मिटि जाय।
तिस नर रूपी ईस कौं, वंदौ सीस नवाय ॥४९३॥

---

४८७ १ लहत।
४८९ : १ missing। २ बिचारि।
४९० . १ अरिहंत।
४९३ : १ दरसन।

चोपई कहै जुगल हरिषेत्र निवासी, काहू देव हरयौ सविलासी।
पूरव वैर दषि दुष दीनौं, अवगांहन करि छोटो[1] कीनौं ॥४९४॥
सोही[1] भरथषंड फिरि आंन्यो, मुथरा नगरी राज दिवांन्यो।
पापी करि तिन मांस षवायो, नरक नगर कै पंथ चलायो ॥४९५॥
तिसकै कुल हरिवंस वषांनै, सत्यारथ उपदेस न मांनै।
जुगल सर्व ही स्वरगति[1] गांमी, नरक न सेवहि रिजु परणांमी ॥४९६॥
तीन कोस की तिनकी काया, स्वर क्यौं करि लघु रूप वनाया।
जो तुम इसहि अछेरा मांनौं, तौ भी नांहि वनै मनि आंनौं ॥४९७॥
काल अनंतानंत भये तै, एक एक ही जुगल गये तै।
सव हरिषेत्र भूमि का षाली, ह्वै कौं[1] मिटै जुगल परनाली ॥४९८॥

दोहा : सव गिणती के जुगल है, घटै वढै नहि कोय।
मरण काल ही जुगल कै, आय जुगलिया होय ॥४९९॥
राषतु[1] चौंदह उपकरण, मुनि कौं नांहि नु दोष।
परिग्रह त्याग दसा विषै, करै परिग्रह पोष ॥५००॥
जहां प्रमांणूं सम नही, परिग्रह ग्रह कौं रंच।
तहां कहौं क्यौं करि वनै, वस्त्रादिक परपंच ॥५०१॥

कवित्त : काल पाय मैले होय आसा होय धोवन की,
धोयें नसै संजम आरंभ विसतारै[1] है।
नास भये मांगन कौं त्रास होय नासन के,
डरतै सु ध्यान विधी[2] थिरता विडारै[3] है॥
देहु द्युति मडन है ब्रह्मचर्य छंडन है,
जिन लिंग षंडन है तातै पट डारै है।
संवर धरनहार अंवर सौं अविकार,
होय कै निरंवर दिगंवरहि धारै है ॥५०२॥

---

४९४ : १ छोटौ।
४९५ : १ सोई।
४९६ : १ स्वर्गति।
४९८ : १ कै।
५०० : १ राषत।
५०२ : १ विस्तारै। २ विधै। ३ विसारै।

दोहा : समयादिक परजाप कौं, काल दर वस मुभांहि।
काल अणू जाणै नही, जै असंख्य जग माहि ॥५०३॥

छपै : काल अणू जो नाहि समय तो होय कहां तैं।
सुथिर वस्तु विन नाहि नास उतपति तहां तैं॥
असत्त जनम जैं होय होय पर अंग जगत मैं।
वुद्धि होय परमान और षिनभगुर मत मैं॥
नहि सधै वस्तु सीमां विमल जनम नास थिर भाव विन।
थिरत[1] निमत्त समयादिकी काल अणूं जगि कहहि जिन ॥५०४॥

कवित : मांनै मनसू वृत कै गणधर घोरो भयो,
काहू काज कै निमत मांस मुनि गहै हैं।
घरि २ विहरि २ अंन्न मागि ल्यावैं,
कहैं मुनि थांन आनि भोजन कौं लहै हैं॥
निज मत निंदक कौ ठौर मारैं पाप नांही,
निर्दय सुभाव धरि काहू को न सहै हैं।
साची वात झूठी कहै भेद वख कौं न लहैं,
हठ रीति गहिर हैं मिथ्या वात कहैं हैं ॥५०५॥
भरथ नै वांह्मी वहन[1] कहै नारी कीनी,
महासती दोष लाइ भववास चहै हैं।
ग्रहवास वसत ही केवली भरथ भयो,
आरसी के मदिर मैं मांनि निरवहै हैं॥
द्रोपदी सती कौं कहैं भई पंच भरतारी[2],
अघ वंध भारी करि सकट मैं फहै हैं।
साची वात झूठी कहैं वख[3] कौ न भेद लहैं,
हठ रीति गहि रहैं मिथ्या वात कहै हैं ॥५०६॥
कोऊ मुनि कंध परि पथ मैं गुरू कौं लियें,
चल्यौ जात केवली भयो है सरदहै हैं।

---

५०४ . १ थिरता।
५०५ १ missing।
५०६ : १ वहैं। २ भई not in A। ३ वस्तु।

कहैं है जवाई वीर नाथ कौ जमाली नामां,
वीर है कुमारो सुनि लरनै कौं षहै हैं॥
ध्रुवकि-ध्रुवकि[1] करि केवली कपिल नांच्यो,
मूरिष रिझांवन कौं अैसी मांनि रहै है।
सांची वात झूठी कहैं वस्तु कौ न भेद लहैं,
हठरीति गहि रहौं[2] मिथ्या वात कहै हैं॥५०७॥

छप्पै : कहहि वहुत्तरि सहस भई वसुदेव-वधूगन।
धनुष[1] पंच सै उच्च वाहुवलि कहैं धरचौ तन॥
सूद्र-जाति-घरि असन करत मुनि दोष न पावै।
देव मनुषिणी भोग-भोग वहि सुरत वढावै॥
इक गर्भ माहि सुलसा धरे, सुत वत्रीस जनै भनहि।
पहिले त्रयष्टि[2] हरिदेव[3] की, नांनां तै उतपति गनहि[4]॥५०८॥
मांनहि वीर विहार अनारिज देस भूमि पर।
कहहि मलेछ चतुर्थ काल सारै हूऐ भर॥
देव-कोस सै च्यारि-कोस कौ तन अव धारय।
प्रांणघात वृत-भग करत नहि पाप विचारय॥
उपवास मांहि वोषदि[1] भषत, वृती न धारहि दोष मल।
चौसठि-हजार नारी गिनै, चक्रवर्त्ति धरि तनु नवल॥५०९॥
समोसरन जिन नगन नांहि दीसै परवांनहि।
अविक्रत तन मैं वस्त्र राग-कारण सरधानहि॥
लाठी राषैं जती कहै अस कर्म[1] वधावहि।
गज ऊपरि ही मुंक्ति[2] गई मरुदेवि वतांवहि॥
नारी अगम्य[3] दुरधर कठनि पच महाव्रत-पद धरहि।
नहि लहहि दोष वलहीन मुनि वार वार भोजन करहि॥५१०॥

छंद *गीता*. दरवित क्रिया विन भावलिंग गृहस्थ किवल[1]-पद धरै।
चिंडाल-आदिक जाति निंदित मुक्ति तदभव वसि करै॥

---

५०७ : १ ध्रुवक-ध्रुवक। २ रहैं।
५०८ . १ धनष। २ त्रिपिष्ट। ३ हरदेव। ४ मनहि।
५०९ · १ वोषधि।
५१० . १ करणं। २ मुकति। ३ A अगाम्य।
५११ . १ केवल।

आभर्ण[2] सहित जिनेस-प्रतिमा राग-कारण मांनते।
अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपना सरधांनते ॥५११॥
साभरण[1] सव सनमुक्ति[2] जे हैं मोनि परिगृह हठ गहैं।
रवि-चद-मडल-मूल आया वीर वदन कौ कहैं॥
साकुती गति मरजाद मेटहि सूर-ससि की जानते।
अनमिल वषांनहि और ठांनहि कलपनां सरधांनते ॥५१२॥
दूषन अठारह मांहि वदलै कहहि और सवारिकै।
चौतीस अतिसय वदलि केई गहहि और विचारिकै॥
जिनमत-निवासी सौं लरहि मुनि दोष रचनां ठानते।
अनमिल वषांनहि और ठानहि कलपनां सरधांनते ॥५१३॥
सौधर्म स्वरपति जीतिवे कौं चमर वितरपति[1] गयो।
तसु वज्रदड विलास-पंडित कहहि[2] वीर-सरनि भयो॥
कर पूरवत मरि गएं न षिरै जुगल-तनु-परवानते।
अनमिल वषानहि और ठांनहि कलपनां सरधांनते ॥५१४॥
निर्वान[1] होत जिनेस-काया षिरै दांमिनिवत नही।
वर नारि दे थिर करै श्रावक देषि कामी मुनि कही॥
केवली तनतैं जीववध ह्वै कहैं मत मद-पानते।
अनमिल वषानहि और ठांनहि कलपनां सरधांनते ॥५१५॥
सुरगि लै जिनदाढ पूजहि ईद्र जिन जव सिव गमैं।
जिन वीर मेर-अचल लायो जनम कल्यांनक समैं॥
जिन-जनम-सूचक स्वपन[1] चौदह और नहि मन आनते।
अनमिल वषानहि और ठानहि कलपनां सरधांनते ॥५१६॥

दोहा : गगादेवी सौं कहै, पचमन वरष हजार।
चक्रवर्त्ति भरतेस नैं, कियो भोग-विवहार ॥५१७॥

---

५११ · २ आभरण।
५१२ १ सामरण। २ मुकति।
५१४ १ व्यतरपति। २ कहैंहि।
५१५ १ निरवान।
५१६ १ सुपन।

अरिल : भोग भूमि छयांनवै नगनहि उछेदि कै,
चर्म नीर नै दोस न लावहि वेदिकै।
घृत करि साधित बासी भोजन लेत[1] है,
सारे फल कौं भुंजत दोष न देत[2] है ॥५१८॥

कवित : रिषभ विरागत निमति नीलजसा नृति[1],
मांनै नांहि देव देवि कीनी[2] जो विधांन की।
मात-पिता जीवते विराग ताकौं नांहि धरै,
वीर वर्द्धमान जिन गर्भवास आंन की॥
वाहुवलि कौं कहैं कि युगल[3] स्वरूपधारी,
हाड पूजै कौडे थापि कहै परठांन की।
नाभि मरुदेवी कौ जुगलधर्म मानतु है,
तिन ही तै जिन-उतपति सरधान की ॥५१९॥

चौपई : होंहि जुगलिया सव मलधारी, कहै सिलाका-पुरिष निहारी।
चौसठि इंद्र न अधिके जानै, वारह देवलोक ही मानै ॥५२०॥
जे जादौं जिन मारिग पक्षी, तिनकौं कहै मांस के भक्षी।
मनुज मांनषोतर कै आगै, जेहै कहै न दूषन लागै ॥५२१॥

छद रोडक : नांही है नाही है काम चौवीस॥
अरु नव-नवोत्तरे लघु समुद्र मानत नांही।
अैरावति भरत तजि षेत्र ऐकसौ साठि माही॥
चौरासी लष जौंनि हैं, ऐ चौरासी वोल।
जे मांनै ते मानि हैं, भवसागर-कल्लोल ॥५२२॥

दोहा[1] तिनहू तै लौंका ढूढिया, निकसि जुदे मत कौं थापिया।
प्रतिमा तिनु पूजन तजि दई, दोष कहे यामै अधिकई ॥५२३॥
तिनमै लौंका सुचि तौ रहैं, ढूढया महा असुचि[1] कौं गहैं।
नहि आचार विचार न कोय, जातै धर्म[2] सधै सुभ होय ॥५२४॥

---

५१८ १ लेतु। २ देतु।
५१९ १ नृत्य। २ कीनौं। ३ मुगल।
५२३ १ चौपई।
५२४ : १ अशुचि। २ धरम।

इनकौ चलन जगत सव जानैं, ग्रंथ माझि अव कहा वषांनैं।
परगट दीसत छांनौं नांहीं, तातैं वरनन कहा कराहीं ॥५२५॥

दोहा : मत स्वेतांवर[1] मैं वहुरि, लषियत[2] अत्रै प्रतछ्छ[3]।
फाटे मन मद ठांनि सो, हैं चौरासी गछ्छ[4] ॥

कवि वचन

दोषभाव धरि नहि कियो, कियो न निज-मत-पोष।
सत्यारथ उपदेस यह, करैं सुजन संतोष ॥५२६॥
सत्यारथ वानी प्रगट, घट-घट करै उदोत।
ससय-तिमर मिटै पटल, वढै ग्यान सुष होत ॥५२७॥

॥ इति वोल सपूर्ण ॥

अथ द्रावड़-संघ-उतपति-वर्नन

दोहा : द्रावड़संघ उत्तपति[1] भई, जिम भाषी मुनि ईस।
सवत वीतैं पांच सै, ऊपरि और छतीस ॥५२८॥

चौपई : मुनि श्रीपूज्यपाद गुनषानि, वज्रनंदि तसु चेला जानि।
पाहुडोनि[1] वेता तन षीण[2], सर्वसास्त्र मैं महाप्रवीण ॥५२९॥
इक दिनि[1] चेलै क्रोध उपाय, दक्षिण मथुरा कै मधि- आय।
द्रावडसघ नयो ठेहराय[2], नये नये सिद्धांत वणाय ॥५३०॥

चौपई[1] . भाषी वीज मद्धि नाहि[2] जीव, हैं प्रासुक नहि दोष सदीव।
षेती विणज आदि वहु कर्म, करि जीवो यामैं न अधर्म ॥५३१॥
सीतल जल के करै सनांन, तिन कै अघ अति होत[1] सुजान।
इन्हैं आदि विपरीति जु वात, करि द्रविड[2]-सघ कियो[3] विष्यात ॥५३२॥

---

५२६ १ श्वेतावर। २ लषिमत। ३ प्रतछ। ४ गछ।
५२८ १ उतपति।
५२९ १ पाहुडानि। २ षीन।
५३० १ दिन। २ ठहराय।
५३१ . १ A missing। २ नहि।
५३२ . १ होय। २ द्रावड। ३ कीयौ।

अथ ज्यापनीय-संघ-उतपति[1†]-वर्नन

दोहा : साल सात सै पांच कै, संघ चल्यौ अघ-धांम।
पुर कल्यांनवर कै विषै, ज्यापनीय यह नांम ॥५३३॥
तहां ऐक श्रीकलस मुनि, तिनहूं नये सिधंत।
करि वातै जु धरि सु अव, कछुयक सुनौं व्रतंत ॥५३४॥
कलपसूत्र स्वेतांवरनु, नयो वणायो ताहि।
मानौं[1] फुनि पूजा करो, रतन-त्रय की चाहि ॥५३५॥

सोरठा : मांने दुहुंके वैन, दिग्गंवर फुनि स्वेतपट।
लहैं कौंन विधि चैन, जमीकौ न असमांन कौ ॥५३६॥
फुनि यह कही असार, स्त्री जाय पहुचै मुकति।
ले केवली अहार, मोषि लहै सर गृंथहू ॥५३७॥
वातै धरि विपरीत, और कितेक सिधात मैं।
संघ त्यागि निज रीति, ज्यापनीय परगट कियो ॥५३८॥

अथ काष्टा-संघ-उतपति वर्नन

दोहा : संघ कासटा की भई, उतपति मनो उपंग।
साल सात-सै-त्र्याणवै, कौ निकस्यो यह संघ ॥५३९॥

चौपई : ग्रांम नंदियड़ इक अति वसै, विनयसेनि यक मुनि तं लसै।
ताकै चेलो कुमारसैन, भयो मुनी धारक मत्त जैन ॥५४०॥
तिय यक समये धरचो सन्यास, ज्यावत जीव सु ठांनि हुलास।
वैठौ एक ठौर मुनिराय, सर्व वस्त कौ त्याग कराय ॥५४१॥
दिन कितेक मैं उपजी ताकौं, षुध्यादिक वाधा अति वाकौं।
तव वन[1] नहि निज धर्म विचारचो, करि अहार सन्यास विगारचो ॥५४२॥

---

५३३ : १ उत्पत्ति।
५३५ : १ मानहु।
५४२ : १ उन।

---

†The less popular sect of the Jains, besides the well known Digambara and Svetambara Sanghas Little research has so far been made on the Yapaniya literature Dearth of material coupled with its close affinity with the Digambara sect makes it still more difficult to differentiate between the two However, Kanarese Jain works would come to our aid, when they have been discovered and a proper assessment of the same has been made

फुनि वह वडे मुनिनु पै गयो, सब विरतांत आपनौं कहचो।
मुनिनु कही फिरि दीक्ष्या लेहु, करि छेदोपसथापन ऐहु ॥५४३॥
वाने विद्या कौ मद ठानि, दीक्ष्या फिरि नहि लीनी जांनि।
नए साख तिन लये वनाय, प्रतिमां काठ-तणी वणवाय ॥५४४॥
भाषी पूजौ सब मिलि याहि, वहु मिलि पूजन लागे ताहि।
सुरही गाय पूंछ के वाल, तिनकी पीछी रची विसाल ॥५४५॥
पूजा पाठ नए वणवाये, आगें पीछें दर्व्य चढाए।
मुनि-तिय कौ दीक्ष्या दे भाषी, देसवृत करिकै अभिलाषी ॥५४६॥
चर्या वीर करो[1] सहु कोय, ऐसें वेहकाये वहु लोय।
प्राछत[2] कहे और के और, इन दै आदि कुवुधि कैं जोर ॥५४७॥
करि कितेक वातें विपरीति, सूरिष मत आने करि प्रीति।
ऐसें नदिसघ मै चाहो, काष्ट सघ उपज्यौ विधि याही ॥५४८॥
जव वाकौ गुर हौ मुनि महा, आय कही यह कीन्हौं कहा[1]।
तव वन[2] कितियक मेटी चाल, कितियक चली जात हैं हाल ॥५४९॥

दोहा : तवही तें कहने लगे, मूलसघ तौ वाहि।
कहै नवीन प्रवीन जन, सघ कासटा[1] याहि ॥५५०॥

अथ निपिछछ-संघ-उतपति-वर्नन

दोहा संवत नौसै त्र्याणवै, सघ निपिछछ उठांन।
मुथरा नगरी मैं हुवो, सो विधि सुनहु सुजांन ॥५५१॥

चौपई : मुनि यक रांमसेन वरनयो, समकित प्रकृति मिथ्याती भयो।
गुरु अर प्रतिमां जिन-वर तणी, तिन मैं विंगि निकासी घणी ॥५५२॥
यह प्रतिमां मेरी है भाई[1], सो ही पूजौंगो मन लाई।
यह गुर मेरो ताहीं मानौं, और मुनिनु कौं नाहि पिछानौ ॥५५३॥

---

५४७ : १ करहु। २ प्राछित।
५४९ : १ A missing। २ उन।
५५० : १ काष्टा।
५५३ : १ मई।

सोरठा : ऐसें वात कितेक, कहि कहि मांथुर श्रावकनि।
पकराई अति टेक, संघ निपछ्य परगट कियो ॥५५४॥

॥ इती संघ उतपति 'संपूर्ण'[1] ॥

सोरठा : कुंदकुंद मुनिराज, श्रीमंदिर[2] जिनके वचन।
सुनि हुव धर्म-जिहाज, अधिक समोधे मुनिनु कौं ॥५५५॥
चलते वहुत कुमार्ग, जो ए मुनि न समोधते।
तव ही तै सुभ मार्ग, गहि केते लागे चलन ॥५५६॥

अथ कुंदकुंदाचार्य-वर्नन

दोहा : संवत गुणचासा तणै, कुंदकुंद मुनिराय।
भये भटारक अवनि पै, तिनकी है अमनाय ॥५५७॥
इनके कारण पाय कै, नाम भये जिम पांच।
सुने सु अव विधिवत कहे, भविजन मांनौ[1] सांच ॥५५८॥
पदमनंदि मुनिवर हुतौ, पैहलें[1] तौ निज नांम।
मुनिस्वर[2] के परसंग तै, लहे नांम अभिराम ॥५५९॥
देव मिल्यौ यक आयकै, करी वीनती येहु।
कहि ऐसो अवहूं करूं, आग्या मोकौं देहु ॥५६०॥
तव[1] मुनिवर ऐसे कही, विदिह षेत्र ले जाय।
श्रीमंदिर[2] स्वांमी तणौं, दरसण मोहि कराय ॥५६१॥
तव स्वरधारि विमांन मुनि, चालयो मद्धि अकास।
राह मांहि पीछी गिरी, ठीक पड़्यो नहि तास ॥५६२॥
मुनि वोले पींछी विनां, हम नहि मग चालंत।
देव विचारी सो करूं, जिहि विधि चाल्ने संत ॥५६३॥
गृधिपछ्छि[1] के परन[2] की, पींछी दई वनाय।
गृधपछाचारिज यहै, तव तै नांम कहाय ॥५६४॥

---

५५५ : १ 'सपूर्ण' not in A। २ सीमंधर।
५५८ : १ मानै।
५५९ : १ पहलें। २ फुनि सुर।
५६१ : १ जब। २ सीमधर।
५६४ : १ गृद्ध। २ परनि।

स्वरमुनि गये विदेह मैं, दरसण किय जिनराय।
ऊंची सव ही की लषी, धनुष पांच सै काय ॥५६५॥
चक्रवर्त्ति आयो तहां, दरस करण जगदीस।
लषि वन मुनि कौ हाथ मै, लऐ उठाय महीस ॥५६६॥
भाषी यह को जीव है, कमड़ल पीछी धार।
जिन भाषी मुनि है यहै, भरथषड कौ सार ॥५६७॥
तव चक्रीयन कौ धरचौ, एलाचारिज नांम।
फुनि आये निज षेत्र मैं, करि मनवछित कांम ॥५६८॥

सोरठा :

कवहू विनां प्रभात, सामायक लागे करन।
समयै हुतौं न भ्रात, तातै वांकी[1] ग्रीव हुव ॥५६९॥
तव तै नांम कहात, वक्रग्रीव आचार्य यह।
फुनि सुनिऐं यह वात, कुदकुंद मुनि जिम भये ॥५७०॥

अरिल

कवहू वाद करत हे आंन[1]-मतीन तै,
कमडल भरचौं लष्यौ जल वुष्ण[2] नवीन तै।
वादी जलकौं मंत्रनि तै मदिरा करी,
पूछी या कमडल मै मद तुम क्यौं भरी ॥५७१॥
तव मुनिवर चक्रेस्वरि[1] कौ सुमरन कियो,
देवि कुंद पुसपनि तै कमडल भरि दियो।
तव तै लागे कहन मुनी कुदकुद है,
महिमां तिनकी जग मैं अधिक अमंद है ॥५७२॥
आमनाय इनकी मत मैं अैसै भई,
सुनी वात कहियतु है मति जांनहु नई।
काहू समये संघ चल्यौ गिरनारि कौं,
कुदकुंदमुनि वहुरि स्वेतपट लारकौं ॥५७३॥
साथि दुहूं मत के ही पच भये घनै,
पहुचे गिर तरि जाय सवै अैसै भनै।

---

५६९ : १ A वोकी।
५७१ : १ अन्य। २ उष्म।
५७२ : १ चक्रेश्वरी।

पहलै दरसन करन तनौं झगरो परचौ,
आपस मांझि दुहुंन ही कै अति रिस भरचौ ॥५७४॥
वेतौ कहै हमारो ही मत आदि है,
दूजे कहै अनादी हम वै[1] वादि हैं।
तव अकास तै भई देववांनी यही,
झगरत काहे आदि दिगंबर है सही ॥५७५॥
पहिलै[1] वंदन करी नेम जिनचंद की,
जवतै आंमनाय ठैहरी मुनि कुंद की।
तवतै रचे कितेक ग्रंथ भवि तारनै,
विसंघीन कौ मत षंडन कै कारनै ॥५७६

दोहा : इनहीं की अमनाय मैं, भये और मुनिराय।
नांमी तिनकी अलप-सी, कीरति कहौ वनाय ॥५७७

छंद मोतीदांम : धरा झमचद[1] वड़ौ विड़दाल।
थप्पौ पट वारह-सै-अठताल ॥
तिके रणथंभ प्रतिष्ठहि काजि।
बुलाय लये मुनि धर्म-जिहाज ॥५७८॥
हुते गुर दक्षिण देस विसाल।
पुन्या धरमैं सुष सौ गुनपाल ॥
दयो तिनु कागद आवन काज।
सितावं पधारहु हे मुनिराज ॥५७९॥
महूरत वांचि दियो यह जाव।
गिणै मति ढील चलै'व सितावं ॥
हुवो रवि अस्त भई जव राति।
गये रणथंभ मुनी परभाति ॥५८०॥
मिले तँह राव हमीर निरिंद[1]।
मही धनि धनि हुवो सु मुनिंद ॥

---

५७५ : १ वह।
५७६ : १ पहलै।
५७८ १ A झमचद।
५८१ : १ नरिंद।

भये वहु पम जे जंति राव।
भयो सु भलो जस पुन्य प्रभाव ॥५८१॥

पुन: अन्योक्त[1] कुंदकुंद अमनाय मैं, भट्टारक जिणचंद।
दोहा : कछुयक तिनहू को सुजस, सुनिऐ भवि गुण वृंद ॥५८२॥

चौपई . यनपं[1] सत्रे महाजन आय, गढ चीतोड[2] सु गये लिवाय।
जहा धर्म घर फुनि वुधिवंत, सांगो राणौं राज करत ॥५८३॥
तहा चौधरी हो जिणदास, सागो तेजो द्वै सुत जास।
साह गोत फुनि वौह[1] धनवान, तिन कौ राषत हे सव मांन ॥५८४॥
सागे इक दिन विनती करी, करहु प्रतिष्ठा मुनि गुन-भरी।
मुनि आग्या माफिक धन लाय, सव सामिग्री[1] दई मगाय ॥५८५॥
तव अति हरष मांनि मुनिराज, करने लगे प्रतिष्ठा काज।
दिवस कितेक करत जव भये, मुनि तौ तन तजि स्वर्गनि गये ॥५८६॥
तिनकै सिष्य पाट कै जोग्य, हुतो न कोई महा मनोग्य।
आयो हुतो प्रतिष्ठा जानि, इक सुरजन पांड्यो[1] गुनषांनि ॥५८७॥
ताके संगि तिया हू हुती, गुन लांवन्य[1] करि अति सोभती।
तिनतैं सवे महाजन आय, विनती करी होहु मुनिराय ॥५८८॥

दोहा : इंह स्वरजन श्रावक तनै, हुतो देवि कौ इष्ट।
तातैं याकौं मांनते, पडितजन हू सिष्ट ॥५८९॥

चौपई : सव मिलि ताहि भटारक करचौ, प्रभाचंद्र नाम यह धरचौ।
अघ-तम-हरनं उयो मनु सूर, वढ्यौ प्रताप सवै भरपूर ॥५९०॥
तिया हुती तिह अजिकाकरी, 'करी प्रतिष्ठा तिनु गुन भरी[1]'।
प्रभाचद्र मुनि कहीं प्रकार, काहू दिसि कौं कियो विहार ॥५९१॥

छंद पद्धरी : दिल्ली के पति पेरोजसाहि,
चांदा गूजर परधांन ताहिं।

---

५८२ १ अन्योक्ति।
५८३ १ इनपै। २ चीतौड।
५८४ १ वहु।
५८५ १ सामग्री।
५८७ १ सुरजन पांडे।
५८८ १ A लावनि।
५९१ १ 'सोभित धर्म ध्यान गुन भरी।'

दोऊ भइया पापड़ीवाल,
तिनकै चित इक उपजी रसाल ॥५९२॥
कीजे इक[1] सुभ कारिज जु कोय,
दै आदि प्रतिष्ठा सुजस होय।
यह करि विचार[2] इक नर बुलाय,
मुहुरत[3] इक सुद्ध भलौ कढाय ॥५९३॥
भट्टारक श्रीमत प्रभाचंद्र,
पठयो वसीठ तिन पै अमंद।
मुनि पासि जाय विनती करीस,
चलि करहु प्रतिष्ठा हे मुनीस ॥५९४॥
दिनकौ बताय दीन्हौं प्रमांण,
सवही सुनि लीनी मुनि सुजांण।
दिन बीते बहु फुनि रह्यौ एक,
मुनि तै नर विनति करी प्रतेक ॥५९५॥
मुनिराज अबै मुहि सीष देहु,
दिन रह्यौ ऐक नांही संदेहु।
कब चलि पहुचै वह ठाम हांन,
तातै दीजे मुहि सीष दांन ॥५९६॥
मुनि कही अहो नर रहहु सोय,
देषहु परभाति सु कहां होय।
सोवत नर जब वह वढ्यौ प्रात,
लषि दिल्ली अचिरज भयो गात ॥५९७॥
मुनि कही जाहु दिल्ली मझार,
साम्हे प्रधांन ल्यावे अवार।
नर आयहुं हूं भायन निकट्ट,
सब कही भयो अचिरज प्रगट्ट ॥५९८॥
गज हय रथ[1] फुनि[2] सुषपाल साजि,
सब आये सांम्हे लैन काजि।

---

५९३ : १ यक। २ उपाय। ३ महुरत।
५९९ १ फुनि। २ रथ।

वाजे वजाय नौवति निसांन,
विधि भली मिले मुनि सौं सुजांन ॥५९९॥
मुनि नगन पयादे चलन लाग,
सव करी अरज मिलि हे सभाग।
चढि लेहु[1] पालिकी मुनि महांन,
यामैं हमरो अति वढै मांन ॥६००॥
कहि मुनि हठतैं चढि अहो साहु,
या विधि कौ तुम कीज्यो निवाहु।
चढि चले पालिकी[1] साथि सर्व,
जैनी फुनि[2] पुरजन त्यागि गर्व ॥६०१॥
आवत पुर मैं मनिधरि विषाद,
राघो चेतन अति किय ववाद।
पालिकी वंद करि दी लवार,
दीन्ही चलाय मुनि विन कहार ॥६०२॥
इन आदि वाद कीन्हे अनेक,
मुनि जीति सर्व राषी सु टेक।
इक दिनि राघो चेतन सु चाहि,
नर पठ्यो वूझन मुनिनु पाहि ॥६०३॥
मावस दिनि मुनि तिह ठान देषि,
सिष्यनु तैं वूझी तिथि विसेषि।
सिष्यनु मिलि पूरन्नया कहीस,
यह अरज दिलीपति पैं दईस ॥६०४॥
है आजु अमावस अहो साहि,
वुनु पून्यौं झूठी कही काहि।
पतिसाहि षिनाई† वूझि तिथ्यि[1],
मुनि भाषी पून्यौं आजि सत्ति ॥६०५॥

६०० १ A चढ़ि वेहु।
६०१ : १ पालकी। २ फिरि।
६०५ १ तितिथ।

†A popular Jharasahi word—To call for—e.g "वीदणी ने पीर खिनाई"।

देवी पद्मावति[1] कौं अराधि,
विनती करि संध्या समै साधि।
दीन्हौं उगाय नभ मांझि चंद,
प्रगटचौ पुर मै जस अति अमंद ॥६०६॥
वा दिजु मिलि भाषी अहो साहि,
द्वादस कोसनि परकास याहि।
तव सांड[1†] दौड़ाये[2] अनेक,
सुनि मुनि दिय वांधि सु जाल ऐक ॥६०७॥
वे दौड़े कोस वहौत राति,
वारह ही मैं ऊग्यौ प्रभाति।
या विधि लषि साहि मुनिदं पासि,
आये नमि कीन्ही अरज दासि ॥६०८॥
यह कारण अव कहिये मुनीस,
मुनि कही वाद जांनहु महीस।
ताहू समये वादीनु आय,
मंत्रनि तै कमडल मद भराय ॥६०९॥
दै कही अहो पतिसाहि ऐहु,
कमडल मद भरचौ विना संदेहु।
मुनि लषि वामैं किय पुष्प आंनि,
दीन्हौ उघाड़ि कमडल महांनि ॥६१०॥
अति प्रस्न[1] भयो पेरोजसाहि,
मुषतै मुनि धनि-धनि कही चाहि।
यह कथा सुनी सव राजलोक,
कीन्हौं निदांन सव ही सु थोक ॥६११॥
दरसन विनि भोजन हम करै न,
या विधि भाषे वेगमनु वैन।

---

६०६ : १ पदमावति।
६०७ : १ सांडे।

---

†Messenger on the Camel's back.

तब साहि बुलाये द्वै प्रधान,
भाषी ले आहु मुनी महान ॥६१२॥
दरसन बेगम जब करे आप,
तब ही वुनकौ मिटिहै[1] प्रताप।
मिलि भाषी मुनि तैं सबनि साह,
तुम दरस बेगमनि कै सु चाह ॥६१३॥
तातैं हमरी विनती सु ऐहु,
करि कै लँगोट दरसन सु देहु।
मुनि कही सुनो तुम सकल साह,
चलिजे यह जग मांझि राह ॥६१४॥
साहन मिलि सब सौगँद करीस,
जुत वस्त्र मानिहैं हम मुनीस।
तब तै यह राह चली विसेस,
कछु बल वीरज प्राक्रम घटेस ॥६१५॥

छप्पै : दिल्ली के पतिसाहि भये, पेरोजसाहि जब।
चादीसाह[1] प्रधान भटारक प्रभाचंद्र तब ॥
आए दिल्ली मांझि वाद जीते विद्यावर[2]।
साहि रीझि कै कही करै दरसन अंतहपुर ॥
तिह समै लँगोट लिवाय फुनि बांदे विनती उच्चरी।
मांनि हैं जती जुत वस्त्र हम सब श्रावग सौगद करी ॥६१६॥

अरिल : याही गछमैं भट्टारक जब बहु भये,
वरष कितेक वितीतैं गछ निकसे नये।
तिनमैं चलन वचन को भेद न जानियौं,
निकसन की विधि लखी लिखी सो मांनियौं ॥६१७॥
संवत तेरह सै पिचिहतरचौ जानिवै,
भये भटारक प्रभाचद्र गुनषांनि वै।

६१३ : १ मिटहैं।
६१६ : १ चांदीसाह। २ A बिद्यावर।

तिनकौ आचारिज इँक हौ गुजरात मैं,
तहां सवै पंचनि मिलि ठांनी वात मै ॥६१८॥
कीजे ऐक प्रतिष्ठा तौ सुभ काज ह्वै,
करन लगे विधिवत सव ताकौ साज वै।
भट्टारक वुलवाये सो पहुचे नहीं,
तवै सवै पंचनि मिलि यह ठांनी सही ॥६१९॥
सूरि मंत्र वाही आचारिज कौं दियो,
पदमनंदि भट्टारक नांम सु यह[1] कियौ।
ताकै पाटि सकलकीरति मुनिवर भये,
तिन समोधि गुजरात देस अपनें किये ॥६२०॥

चौपई : ग्यांनभूषण ताकौ सिषि[1] ऐक, दूजौ ग्यांनकीर्त्ति सु विवेक।
दोऊ मिलि कै आधौं आधि, गछ मै लिये महाजन साधि ॥६२१॥
सव गुजरात वहुरि मालवै, फुनि मेवाड़ माहि तिनुनवै।
दिगंवरी इनकी अमनाय, सो विधि अवलौं चाली जाय ॥६२२॥

दोहा : पंद्रह सै इकहैतरे, निकस्यौ गछ ग्वालेर।
सिष्यि मुनी जिणचंद कौ, सिंघकीर्त्ति गुरमेर ॥६२३॥

अथ मंडलाचार्य उतपति वर्नन

पंद्रहसै सु वहैतरे, गछ थाप्यौ नागोर।
रत्नकीर्त्ति यह नांम भनि, निज वलवुधि कै जोर ॥६२४॥
भट्टारक न कहावई, मंडलाचार्य कहाय।
तिनकी वा दिसि मांहि वहु, फैलि गई अमनाय ॥६२५॥
फुनि सतरासै सत्तरे, थप्यौ पाट अजमेर[1]।
मंडलाचारिज दूसरो, तामैं नांही फेर ॥६२६॥
इनहीं गछ मै नीकस्यौ, नूतन तेरह पंथ।
सोलह-सै-तीयासिये, सो सव जग जानंत ॥६२७॥

---

६२० : १ यहै।
६२१ : १ सिष्य।
६२६ : १ अजमेरि।

ऐती विधि इनहू तजी, गुर नमिवो जग सार।
केसरि जिन-पद चरचिवो, पुष्प चढावन चारु ॥६२८॥
भोजन तनक चढात नहि, सषरो[1] कहि त्यागंत।
दीपग की ठौहर सवै, रंगि कै गिरी धरंत ॥६२९॥
न्हावन करत न विव को, इन है आदि कितेक।
भली तजी षोटी गही, तेको कहै प्रतेक ॥६३०॥
तिनकै गुर नाहीं कहूं, जती न पडित कोय।
वही प्रतिष्टा आदि की, प्रतिमा पूजत लोय ॥६३१॥
वेही प्रतिमां ग्रथ वै, तिन मैं वचन फिराय।
ठानि और की और ही, दीनों पंथ चलाय ॥६३२॥
फिरि[1] यक निकस्यौ पंथ अव, है सिरौंज की वोर।
तारण पंडित नै कियो, आप अकलि कै जोर ॥६३३॥
देस मालवा मद्धि तिन[1], नयो देहुरो ठानि।
प्रतिमा पधरावत नही, पुस्तग पूजत जांनि ॥६३४॥
अैसें निकसे मत वहुत मन-मद धरि विपरीति।
यह पचम कलि काल की, फैलि गई जग रीति ॥६३५॥
परि जे अव संसार मैं, जपत मत्र नौंकार।
तिनतें वहसि न ठांनि हैं, रे भवि सो मतसार ॥६३६॥

अथ परिपाटी भट्टारकांनि की वर्नन

दोहा[1] : अव परिपाटी हू कछुक, सुनि जु भये जगचद।
महावीर प्रभु आदि मुनि, भट्टारक गुणवृंद ॥६३७॥

चौपई : श्री प्रभु वर्धमान जिनराय, ते तौ मुक्ति पहुचे जाय।
तिनकै पीछै केवल-ग्यांन, वासठि वरष रह्यौ परमांन ॥६३८॥
तामैं गोतम गणधर भये, वहुरि धरमाचारिज ठये।
तीजे जंवू वणिक-कुमार, ऐ तदभव पहुचे सिव द्वार ॥६३९॥

---

६३३ : १ फुनि।
६३४ : १ तिनु।
६३७ : A missing।

---

†सक्कार or saltish food as different from पक्वान्न।

वर्ष[1] ऐक-सौ ग्यारह अग, चौदह पूरव जुत सु अभंग।
तिनमैं विष्णु मुनी नदि मित्र, अपराजित मुनि भये पवित्र ॥६४०॥
गोवरधन अर भद्र सुवाहु, ऐही पांच भये मुनिनाहु।
वर्ष ऐक-सौ असी[1] जानि, ताकै ऊपरि तीन वषांनि ॥६४१॥
ग्यारह अग दस पूरवधारी, भये मुनी ग्यारह अविकारी।
प्रथम विसाषाचारिज जानौं, वहुरि पोष्टिलाचारिज मांनौ ॥६४२॥
भये षित्रियाचारिज मुनी, ज़य फुनि नागसेनि मुनि गुनी।
सिद्धारथ ध्रितषेनि मुनिद, विजय वुद्धि मांन गुनवृंद ॥६४३॥
गंगधर्म-सेनि मुनिराय, ऐ सव ग्यारह भये सुभाय।
वर्ष दोयसै ऊपरि वीस, ग्यारह अंग धरें मुनि ईस ॥६४४॥
नक्षित्राचारिज जयपाल, पांडु वहुरि ध्रुवसेन विसाल।
कंसाचारिज हैं गुनषांनि, ए पांचौ ही जग सुषदानि ॥६४५॥
वर्ष एक सौ वहुरि अठारा, एक अंग इनहूं नै धारा।
सुभद्र यसोभद्र मुनिराज, भद्रवाहु जग के सिरताज ॥६४६॥
लोहाचारिज लौ अंग जानें, छसै-तियासी वर्ष वषानें।
वहुरि अंग जव विछति जांनी, तव उपजे मुनिवर श्रुत-ग्यानी ॥६४७॥

अथ पट्टावली वर्नन

दोहा : दिग्गवर पट्टावली, अव सव सुनि हित ठांनि।
भद्रवाहु यक अंगधर, तिनंही तें लै जांनि ॥६४८॥

चौपई श्री गुरु भद्रवाहु मुनि भयो, संवत च्यारि तणै पट लयो।
तिनकै पट्टि भये गुनषांनि, संवत छव्वीसा कै आंनि ॥६४९॥
गुप्तगुप्त आचारिज एक, नांम तीन तिन लहे प्रतेक।
दुतिय नांम अर्हदवलि लह्यौ, त्रतिय विसाषाचारिज कह्यौ ॥६५०॥
तिनकै पटि[1] भटारक भये, जहां-जहां जे-जे निरमये।
माघनदि छव्वीसं[2] साल, भये वहुरि जिणचंद विसाल ॥६५१॥

---

६४० . १ वरष।
६४१ . १ असी।
६५१ : १ पाटि। २ छत्रीसं।

कवित्त : गुणचासै भये कुंदकुंद पुनि उमा-स्वामि,
लोहाचार्य जसकीर्त्ति यसोनंदि[1] जये हैं।
देवनदि पूज्यपाद गुणनदि वज्रनदि,
है कुमारनदि लोकचंद जग छ्ये हैं॥
प्रभाचंद्र नेमिचंद्र भांनुनंदि हरिनदि,
वसुनदि वीरनदि तिन्हैं हम नये हैं।
रतनकीरति मांणिनंदि मेघचद्र पुनि,
सातिकीर्त्ति मेरकीर्त्ति[2] ए छवीस भये हैं॥६५२॥

दोहा : भंदिलापुर दक्षिण दिसा, पट्ट भये छव्वीस।
वहुरि सुनहु[1] जे जे भये, जिहठां मुनि-गन ईस॥६५३॥
छसै-तियासी साल त्तै, पट वैठे मुनिराज।
भट्टारक-पद पाय करि, भये सुधर्म जिहाज॥६५४॥

कवित्त महीकीर्त्ति विष्णुनंदि भूषण श्री सिरीचद,
नदिकीर्त्ति पुनि देस भूषण से मानिऐ।
अनतकीरति धर्मनदि वीरचद भये,
रामचद्र रांमकीर्त्ति अभैचद जानिऐ॥
नरचंद्र नागचद्र वहुरि नयणनदि,
हरिचद्र महीचद्र माघचद्र दानिऐ।
ए अठारा पट[1] भये नगरी उजेनि मांहि,
नमत वषतरांम तिन्हैं उर आंनिऐ॥६५५॥

चौपई संवत इक सहस्र तेईस, लक्ष्मी ससि गुणनदि मुनीस।
गुणचद लोकचद मुनि[1] वऐ, ऐ पट च्यारि चंदेरी भये॥६५६॥
सवत ऐक हजार गुण्यासी, कै श्रुतकीरति हैं गुणरासी।
भावचद्र महिचद्र वषानौ, ऐ पट तीन भेलसै जानौ॥६५७॥

---

६५२ १ यसोनद। २ मेरुकीर्त्ति।
६५३ १ सुनौ।
६५५ १ पाट।
६५६ १ मुनु।

दोहा . ग्यारह सै चालीस कै, साल[1] भये अभिराम।
कुडलपुर मै ऐक पट, माघचद्र तसु नांम ॥६५८॥
ग्यारह सै चालीस परि, च्यारि साल लै जांनि।
तव तै भये मुनीस जे, तिनकौं सुनि दै कांनि ॥६५९॥

कवित्त : वृषभनंदि सिवनंदि विश्वचंद्र सिंहनंदि,
भावनंदि देवनदि महा मुनिराज है।
विद्याचंद्र सूरचंद्र माघनदि ग्यानकीर्त्ति
गंगकीर्त्ति सिंघकीर्त्ति धर्म [के] जिहाज हैं॥
हाडोती के देस मांहि वार नगरी है तामै,
वारापट भये ये सकल सिरताज है।
कर जोरि तिनकौं नमत है वषतरांम,
गुरनि कौ मेरी भव-भव तनी लाज है ॥६६०॥
ग्यारहसै नव-निवै तएै सालि हेमकीर्त्ति,
सुन्दरकीरति नेमिचंद अभिरांम है।
नाभिकीर्त्ति वहुरि नरिंद्रकीर्त्ति सिरोचंद,
पद्मनंदि वर्द्धमांन भले गुन धांम हैं॥
अकलकचद्र औ ललितकीर्त्ति केसोचंद्र,
चारु अभै वसंतकीरति तीनौं नांम हैं।
दुरग चीतोड[1] मांहि पट भए चौदह ऐ,
तिनकौं वषतरांम करत प्रनांम है ॥६६१॥

छंद : वारह सै-छ्यासठे साल पट प्रष्याति कीरति पायो।
सांतिकीर्त्ति फुनि धर्मचंद्र मुनि रत्नकीर्त्ति जस छायो॥
प्रभाचद्र लौं भये पांच पट ए अजमेरि वताये।
पद्मनदि सुभचंद दोय मुनि दिल्ली मैं पट पाये ॥६६२॥

दोहा पट्ट एक ग्वालेर मैं, भऐ मुनी जिणचंद।
पद्रह-सै-सतवोत्तरै, मनहु उये निसि चंद ॥६६३॥

---

६५८ १ सालि।
६६१ . १ चीतौड।

पद्रह-सै-इकहैतरे, प्रभाचंद्र यह नाप।
बहुरि भये चीतोड[1] मैं, सकल गुननि के धाम ॥६६४॥

अरिल : पद्रह-सै-इकअस्सी धर्म सु चद है,
ललितकीर्त्ति फुनि चद्रकीर्त्ति सु अमद है।
भट्टारक देवेंद्रकीर्त्ति मुनि च्यारि ऐ,
भऐ चाटसू मैं भविजन उर धारिऐ ॥६६५॥

सोरठा : नरेंद्रकीरति नांम, पट इक सागानेरि मैं।
भये महागुन-धांम, सोलह सै इक्याणवै ॥६६६॥

अरिल : सत्रह-सै-बाईस तणै जो साल है,
सुरेंद्रकीरति भये सु तिन कै पटि लहै[1]।
जगतकीर्त्ति देवेंद्रकीर्त्ति गुनलीन है,
अवावति मैं भये भटारक तीन है ॥६६७॥

दोहा : इक पट दिल्ली फुनि हुवो, महेंद्रकीरति नांम।
सत्रह-सै परि-बाणवै, लह्यौ पाट गुनधांम(अभिराम[1])॥६६८॥

चौपई : पट्ट दोय पाये मुनिराय, नगर सवाइ जैपुर आय।
इक खेमेंद्रकीर्त्ति गुनपाल, अठारह-सै-पद्रह[1] कै साल ॥६६९॥
तिनकै पटि राजै बुधिवांन, सुरेंद्रकीरति तम हर भान।
साल अठारह-सै-तेईस, भये भटारक महा मुनीस ॥६७०॥

दोहा : भद्रबाहु मुनि आदि है[1], भट्टारक गुन षानि।
सुरेंद्रकीरति लौं भये, पट अठ्याणवै जानि ॥६७१॥
ऐसै यह पट्टावली, ग्रथनि कै अनुसारि।
कछु पोथिनु कौं देषि करि[1], वरनन कियो विचारि ॥६७२॥

---

६६४ १ चीतौड।
६६७ : १ पटि हा लहैं।
६६८ १ अभिराम missing।
६६९ १ ठारह-सै-पद्रह।
६७१ १ दै।
६७२ . १ कै।

गादि श्री महावीर की, बैठत आये संत।
तिनकौं वन[1] सम मांनिकै, पूजहू सकल महत ॥६७३॥

इति पट्टावली पूर्ण ॥ अथ आगम कथन वर्नन[1] ॥

अरिल. फुनि यह आगम कथ्यौं सु भवि सुनियौं सवै,
सवत अठ्ठारहसै वीतेंगे जवै[2]।
तापै वरष कितेक गये इम भास ही,
दक्षिण दिसि मै वंध्याचल मैं[3] गिर पास ही ॥६७४॥

दोहा : पुस्कल नगर विषैसु ह्वै, वीरचंद मुनिनाथ।
गछ पडिकमणूं अर क्रिया, न्यारी करिहै गाथ ॥६७५॥
भील संघ उतपति करै, नये ठांनि वहु वाक्य।
ग्याना[1]वरनी कर्म कौ, लहि करि कै परिपाक[2] ॥६७६॥
वहु विधि करि जिन मत जु है, अव तिह तणौं[1] निपात।
करिसी फुनि मुनि कोन ह्वै, जो मेटै मिथ्यात ॥६७७॥
कहु जिन मग विधि और ही, चल्यौं जाय इम धर्म।
ज्यौं त्यौं सुख दुष भुंजि कौ, करि करि के वहु कर्म ॥६७८॥
आवै पंचम काल कौ, अंत जवैं इक कोय।
मूल गुणनि कौं धारि कै, वीरांगज मुनि होय ॥६७९॥
अलप पढ्यौ है सासतर, तौहू जैनि प्रकास।
करिहै वहुरि मिथ्यात कौ, करिसी वहै विनास ॥६८०॥
भद्रवाहु कौ चरित लषि, वरन्यौ है या मांहि।
भविजन लषि मोकौं कछू, दोस दीजियो नांहि ॥६८१॥

अथ श्रावक की उतपति वर्नन

दोहा : अव उतपति श्रावकनु के, षांप गोत की जेम।
भई सु पोथिनु देषि करि, वरनत है कवि तेम ॥६८२॥

---

६७३ : १ उन।
६७४ : १ from इति to वर्नन not in A। २ सवै। ३ not in A।
६७६ १ ज्ञाना। २ परपाक।
६७७ : १ तणू।
६८२ : १ अथ उतपति श्रावग की वर्नन।

आगे तौ श्रावक सबै, ऐकमेक ही होत।
लगे चलन विपरीति तब, थरपे षांप रु गोत ॥६८३॥
थपी वहैतरि षांप ऐ, गाम नगर कै नांम।
जैसे पोथिनु मै लषी, सो वरनी अभिराम ॥६८४॥

षांप वर्नन

चौपई : गोला पूरव गोला राडा, कहैं लवेचू गोल सिघाड़ा।
षडेलवाल महाजन सोहै, जैसवाल जग मैं अव जोहै ॥६८५॥
वघेरवाल सु अग्गरवाला, सहिलवाल जिन धर्म सम्हाला।
सात षाप पुरवार कहायै, तिनके तुमकौ नांम सुनावै ॥६८६॥
अठसष्षा फुनि है चौसष्षा, सैहसरडा फुनि हे दोसष्षा।
सोरठिया अर गांगड जांनौं, पद्मावत्या[1] सप्तमा मांनौ ॥६८७॥
फुनि ढूसर अरु वरहासेणी, षंथड़वाल गहोई लेणी।
इकईसवा जु जाणि सचाणा, वहुरि अजोध्यापुरी वषाणा ॥६८८॥
गोरावाड वहुरि कठनेरा, वीडलसानी मसरा हेरा।
धकडा गूजरवाली वाल, माणडा[2] सव मांहि विसाल ॥६८९॥
वेरवडा फुनि पल्लीवाल, गंगरिक ए वत्तीस सम्हाल।
तीन षाप के हैं द्वै नाम, तेहू तू सुनि लै अभिराम ॥६९०॥
सेहरिया निगमां गुजराती, मेवाडा रा-सूयचा-भाती[1]।
षरवा षंडावता हू वाजै, ऐ तीनौं षटनांम विराजै ॥६९१॥
नागद्रहा अर नरसपयं घोड़ा, वयानश्रा फुनि है चीतोडा।
है हरधरा और सीदरा, कुलया श्रावक अरहू नरा ॥६९२॥
दहवड़ राय कडावण घोरा, चतुरथ श्रावक है अति भोरा।
पचम श्रावक है सुभकारी, ऐ अठतालीसौं अविकारी ॥६९३॥
चचल वल गोरा गुणवान, करमणोत श्रीमाल सुजांन।
फुनि ऐ श्रावक पांच कहावै, है चिडुकरा विवोरा भावै ॥६९४॥
मद वेवावली गुरा जांनौं, कमटी आगै श्रावक आंनौं।
नुतपा श्रावक सव मन भाये, तुला सिरी श्रीमाल कहाऐ ॥६९५॥

---

६८७ १ पदमावत्या।
६९१ । १ मेवाडा रा या सूचा भाती।

इक कचगार दुतिय हय गार, त्रतिय व्रांह्मरण फुनि लौ गार।
द्रावड़ नल या पन सिषवाल, काकलवाड़ जैन सगवाल ॥६९६॥
श्रवरण पगाहुं मड़षित्रिया, वोसवाल अर वुढ़्ढोलिया[1]।
ऐ सव पांप वहैतरि भई, वारह और सुनौ यन मई ॥६९७॥
कंघड़ जनड़ा कोरड़वाल, षडहूता अरु मेडतवाल[1]।
है अहिछत्र वहुरि दोहला, हरसूरा सुड़ीड़हा भला ॥६९८॥
गोतवंसी वल री गुल कहे, पोहकरवाल सु वारा भये।
पांप वहैतरि तौ वे कही, ऐ मिलि सव चौरासी भई ॥६९९॥
पोथी पांच सात कौं देष[1], करि विचार यह कीनौं लेष[2]।
यामैं भूल्यौ चूकयौ होय, ताहि सुधारि लेहु भवि लोय ॥७००॥
इनंही मैं जो षंडेलवाल, तिनमै निकसे गोत रसाल।
चौरासी है तिनके नांम, सो विधिवत कहियत सुषधांम ॥७०१॥

अथ षंडेलवाल उतपति वर्नन

चौपई : श्री प्रभु महावीर जिनराय, तिनहि नमौं भवि मन वच काय।
पीछे भये कितेक मुनिंद, तिनमैं यसोभद्र गुणवृंद ॥७०२॥
एक अंग धारक यह मुनी, यनकहु वातें अैसैं सुनी।
नगर षंडेला यक अभिराम, भूपति तसु षडेल गिर नांम ॥७०३॥
वंस सोम कुल है चौहांन, सोभित तासु तेज जिम[1] भांन।
तहां मुनीस्वर गये कित्तेक, विप्रनु तें किय वाद अनेक ॥७०४॥
जीते वाद रहे मुनि जहां, विप्रनु कोप कियो तव तहां।
पुरमैं मलवाई कौ रोग, उपज्यौ काहू पाप संजोग ॥७०५॥
छीजन लगे वहुत नर नारि, प्रोहित विप्रनु तवै विचारि।
जग्य सथारयौ जव नरमेद, तामैं होमैं मुनि पढि वेद ॥७०६॥
तवतैं विथा अधिक ऊपनी, मरन लगी पिरजा पुर तनी।
फुनि सव देस मांहि विन नीति, प्रगटयौ रोग महा विपरीत ॥७०७॥

---

६९७ : १ वुड्ढेलिया।
६९८ : १ मेरुतवाल।
७०० : १ देषि। २ लेषि।
७०४ : १ जिमि।

तवै उपद्रव लषि पुर मांहि, नर नारी सवही निकसाहिं।
नगरि नजीक गुढे करवाय, वसे तहां सव पुर के आय ॥७०८॥
अैसै होमे सुनि मुनिराय, यसोभद्र तव कियो उपाय।
सिष्य[1] जिनसेनि हुतौ मुनि साहु, ताकौं कही षडेलै जाहु ॥७०९॥
थापो श्री जिन-धर्म प्रवीन, जैसै चलि आयो प्राचीन।
काहू भाति संक मति करो, प्रभु कौ नाम हिये मधि[1] धरौ ॥७१०॥
तव जिनसेन[1] षडेलै आय, श्रावक श्रेष्ठी लये वुलाय।
तिनकौ जुदौ वसायो गुढौ, सव कौं कही नांम जिन पढौ ॥७११॥
देव्य अराधी चक्रेस्वरी, ताकौं मुनि यह आग्या करी।
सव जैनिनु की रक्षा[1] करो, रोग व्याधि इनकौं सव हरो ॥७१२॥
देवी मुनि की आग्या पाय, जैनिनु कौ दुष दयो मिटाय।
तवै सुषी सव श्रावक भये, समाचार नृपहू पै गये ॥७१३॥
सुनि आयो षंडेल-गिर भूप, वदे मुनि के चरन अनूप।
विनती करी अहो मुनिराज, तुम हौ नर भव जलधि जिहाज ॥७१४॥
कौंन पाप पिरजा छीजंत, सो मोकौं कहिए विरत्तत।
छीजत भये वरष दस दोय, काहू भाति साति नहि होय ॥७१५॥
तव मुनि भाषी अहो महीस, जिनमत धारी महा मुनीस।
तप करते या नगर ढिगारि, विप्रनु होमे जग्य मझारि ॥७१६॥
घोर पाप उपज्यौ पुर मांहि, तातै सव नर नारि छिजांहि।
यह विरतांत सुण्यौ नृप सवै, दुषी भयो मन मैं अति तवै[1] ॥७१७॥
विप्रनु तै भूपति अनषांहि, क्रोध करन लागे मन मांहि।
तव मुनि कही अहो नर ईस, सोच फिकर मति करहु नरीस ॥७१८॥
विप्र प्रोहितनु सांमिल होय, तुम तै तौ यह राषी गोय।
कियो जग्य होमैं मुनि घनै, तातै तुम्हैं दोष नहि वनै ॥७१९॥
तव नृप कही अहो रिषराय, दोष मिटै सौ कहौ उपाय।
औरनि तै यह मिटै न पाप, तुमही मेटौ जग सताप ॥७२०॥

---

७०९ : १ सिषि।
७१० : १ मध्य।
७११ : १ जिनसेनि।
७१२ : १ A रक्या।
७१७ : १ जवै।

आचारिज बोले नृप अहो, श्री जिनधर्म मर्म तुम गहो।
और सबै त्यागौ मत जाल, तौ बचाव ह्वै है ततकाल ॥७२१॥
भूपति हाथ जोरि सिर नाय, सबै कबूली मन वच काय।
तबतै चौकी दै ईश्वरी, व्याधि सबै पुरजन की हरी ॥७२२॥
पिरजा सुषी भई सब जांनि, भूपति हरष अधिक मन मानि।
बोले तुमहि धन्य मुनि नाथ, जग बूड़त राख्यौ गहि हाथ ॥७२३॥
अबजो आग्या ह्वै सो करैं, तुम प्रसाद हम भव दधि तरैं।
मुनि भाषी करिऐ नृप सार, श्रावग के बृत अगीकार ॥७२४॥
जगत माहि हैं जन बहु रूप, तिनमै होहु महाजन भूप।
और ग्रांम हूं तै नर-नारि, आऐ तिन्हैं बुलाय विचारि ॥७२५॥
सबकी षांप सु षंडेलवाल, ठैहराई समेति भूपाल।
अैसै मुनि इष्ट कै जोरि, सबकौं श्रावग किये बहोरि ॥७२६॥

दोहा : जे आऐ जिह ग्राम तै, ताही नांम सुगोत।
ठैहराऐ फुनि वंस कुल, पूरव किए उदोत ॥७२७॥
नाम बस के जो हुते, आगै ही प्राचीन।
सोम-हरी इष्वाक कुरु, फुनि सो रई प्रवीन ॥७२८॥
तामैं सोम सु वंस मै, गोत तीन चालीस।
भये रहे कुल आदिके, देवी नई थपीस ॥७२९॥
प्रथमहि भाई भूप जुत, चौदह जांनि सुबुद्ध।
ते जिनसेनि समोधि कै, कीन्हे श्रावग सुद्ध ॥७३०॥
बस सोम चौहान कुल, गोत गांम कै नांम।
जहां जहा जो बसत हौ, सो दीन्हौं अभिराम ॥७३१॥
कुलदेवो चक्रेस्वरी, तिनकी दई सथापि।
सो पूरै मन कामना, विघन न होय कदापि ॥७३२॥

छंद छप्पै[1] : गोतसाह किय भूप षडेना के जो नायक।
गांव भावसा तणें भावसा गोत सु लायक ॥
जल वाणी भूलणां पापड़ीवाल बताये।
दरडौध्या अरडक्चा गांम कै नाम कहाऐ ॥

७३३ : १ A छप्पै only ।

पीतल्या पहाडचा साभरचा नरपति हेला पांडिया।
इम राजभद्र अरु छावडा चौदह गोत सुमाडिया ॥७३३॥

सोरठा : तिनमैं वारह मांहि, वंसदेव्य कुल ऐक ही।
भेद भाव कछु नाहि, कहि आयो सो जानियौं ॥७३४॥

अरिल : गोत दोय की वात भई अैसैं नई,
देव्य सावडा तणी वहुरि औरिल भई।
कुल देवी संभराय साभरचा पूजही।
वरष कितेक वदी तें इम पूजें सही ॥७३५॥

दोहा : या विधि तीयालीस मैं, चौदह कुल चौहांन।
भये सु भाई भूप जुत, फुनि यह सुनी सुजान ॥७३६॥
थापे हैं जिनसेनि तौ, चौंदह ही कुल गोत।
वहुरि और मुनिवर नु मिलि, थापे गोत सुपोत ॥७ ७॥
षट कुल पांमेचा किये, देवी औरिल मांनि।
रारा रावत राउंका, मोघचा मौंठचा जांनि ॥७३८॥
गोत विलाला दोय विधि, इक कहि आयो सोय।
दूजे सोनिल कौंन मैं, कुल नदिचा होय ॥७३९॥

सोरठा कुल जादव में पांच, गोत नीकसे हैं ललित।
तामैं मानहुं सांच, डेउचल पूजें वैद तौ ॥७४०॥
वनमाला फुनि वव, भडसाली अरु नरपत्या।
करत न तनक विलव, पूजत देवी रोहणी ॥७४१॥

अरिल : कुल मोहिल मैं गोत च्यारि ही जानिकैं[1],
टौंग्या पूजत देवी चावंड आनिकैं।
वहुरि वाकलीवाल कासिलीवाल हैं,
हलद्या पूजें देवी जीरण विसाल हैं ॥७४२॥

दोहा : कुल गेंहलौत[1] सुगोत त्रय, पूजत गणपति चौथि।
है विनायक्या विवला, वहुरि पोटल्या कोथि ॥७४३॥

---

७४२ १ जांनकैं।
७४३ १ गेंहलोत।

अरिल : पंच जु कुल पडिहार गोत देवी सुनै,
षेत्र मालिया दोसी चांवड कौं मनै।
पीगोल्या कडवा गिर नांदिल मांनिऐं,
वड़साली पांडचा सरसलि के जानिऐं ॥७४४॥
कुलहु जील तूवर फुनि सोढा सांषला,
इन च्यारचौं कुल मांहि गोत कहिऐ भला।
दगड़ा अर पाटणी गिनोड़चा सांषुर[ए]या,
याही क्रम तै देव्य नांम लषिऐ भएया ॥७४५॥
सरसलि आंमणि सकरणि अरु सभराय कै,
पूजन जात सु च्याह्यौं गोत सुभाय कै।
राजहंस अहंकारचा गोत सु दोय है,
सरसलि सरस्वतिन मै सुकुल नहि होय है ॥७४६॥

दोहा : कुल इन दोन्यौं गोत कै, लिष्यौ न देख्यौ कोय।
तातै वरनन नहि कयौ, दोस ना दीज्यौ लोय ॥७४७॥
सोमवंस के वरनिऐं, गोत तीन चालीस।
अव कुरुवंसी जे भये, तिनकी सुनहु कहीस ॥७४८॥

चौपई : कुर-वंस मैं अठारा गोत, तिनके कुल फुनि देवी होत।
नांम गांम कै गोत प्रमांन, सो सुनि लीजे सकल सुजान ॥७४९॥
कुल नादेचा गोत सु तीन, देवी सोनिल पूजहि दीन।
छाहड़ कोकराज जुग-राज, ऐ तीनौं तिनमै अति लाज ॥७५०॥
कुल मोहिल ह्वै गोत विसाल, सिरी मूलराज लटिवाल।
इक कुल के जानौं गैहलोत[1], तिनकौ वीरषडिया गोत ॥७५१॥
ऐ तीनौं श्री देव्य पुजाहि, फुनि कुलदेवड़ानि ह्वै माहि।
कुल भाएयांरु निगोत्या जेह, देवी हेमां पूजत तेह ॥७५२॥

दोहा फुनि को कारण पाय कै, गोत निगोत्या जांनि।
कुलदेवी चांवंड की, तिनकै है अति मानि ॥७५३॥

चौपई : कुल चंदेल गोत द्वै सार, मूलसरचा फुनि चांदूवार।
देवी मातणि पूजत गुणी, तामै भेद कहूं सो सुणी ॥७५४॥

---

७५१ : १ गहलोत।

चांडूवाड़ भेद द्वै मेल, इक कुरुंवसी कुल चदेल।
इक सोमवस कुल चावडा, दोऊ मातणि पूजै षडा ॥७५५॥
तीन गोत कुल गौड उजेरा, गोधा सरवाड्या अजमेरा।
देवी नादणि पूज कराही, फुनि गोधा जिन साति पुजांहीं ॥७५६॥

दोहा : देवी तजि जिन साति कौ, पूजन लागे जेम।
बीतें वरष कितेक सौ, भवि सुणि कारण तेम ॥७५७॥
नादणि की मूरति हुति, रूपा तणी मनोग्य।
ताहि भाजि सुवरण तणी, करि पूजी-अति जोग्य ॥७५८॥
जब नादणि करि क्रोध कछु, कीन्हीं तिनकौं दोस।
तबतें पूजे साति जिन, हरचो देवी कौ रोस ॥७५९॥
बारहसै अठताल कै, सालि भई यह रीति।
तबतें गोधा सांति जिन, पूजत हैं करि प्रीति ॥७६०॥

चौपई. तीन जांनियौं कुल गैहलोत, पूजें पद्मावति ऐ गोत।
पाटोधी चौधरी सु सार, सेठी जानि दोय परकार[1] ॥७६१॥
इकतौ कहि आयो सु सहीजे, दुतिय वस इष्वाक कहीजे।
सेठी गोत लोह-सिल देवी, पूजत है इह भाति सुणेवी ॥७६२॥
इक कुल कोटेचा सुणि-वाणि, कांन्हड देवी गोत सौगाणी[1]।
इक कुल ठीमर देवी लाहणि, कालागोत न हाकै वाहणि ॥७६३॥
कुरवसी ऐ गोत अठारा, अब इष्वाक वस मैं ग्यारा।
गोत भऐ कुल देव्य सुणीजे, भेदभाव तामैं न करीजे ॥७६४॥
है कुल मेरठि लुह-सिल पूजै, गोत लुहाड्या लावट गूजें।
त्रय कुल कूरम गोत कटारचा, औ गगवाल झांझरी भारचा ॥७६५॥
ऐ तीनो पूजत जमवाय[1], इक कुल नादेचा सुभ पाय।
गोत नौपडा कहै अनूप, पूजत मस्ता देव्य स्वरूप ॥७६६॥
कुल वड़गूजर गोत सु तीन, विरल्या अर वावसा कुलीन।
ए द्वै मानत देवी सिरी, नमैं वौहरा सौ तिल सुरी ॥७६७॥

---

७६१ : १ प्रकार।
७६३ : १ सोगाणी।
७६६ : १ जमवाइ।

दुतिय वौहरा कुल गैहलोत, श्रौर सकल जांनौ वह पोत।
कुल भाला सु गोत चरकनां, नांदिल पूजत है सुभ मनां ॥७६८॥
ए सव ग्यारह गोत सुभये, वंस इक्ष्वाक मांहि वरनये।
अव सुनि कुल सो रई प्रसिद्ध, गोत नीसरे दस ता-मद्धि ॥७६९॥
कुल सोलंषी श्रांमिरिण देव्य, गोत श्राठ मै है श्रति सेव्य।
सोनी लौंहग्या फुनि सोहनी, भूंछ पांपल्या गदह्या भनी ॥७७०॥
सूपत्या सहित भये हैं सात, वहुरि पावड़्या है द्वै भांत[1]।
इक पांवड़्या नमै मोहनी, दुतिय नमैं श्रांमिरिण[2] कौं गुनी ॥७७१॥
कुल सुनार द्वै श्रांमिरिण नमैं, वज्रहथा फुनि वज-गोत मै।
ए दस वंस सोरई कहे, द्वै हरि-वंस माभि हू गहे ॥७७२॥
नरपौंल्या[1] निरगंधा गोत, कुल है दहरचा श्रौर नहि होत।
देवी नांदवि[2] नमरण करांहि, सुषी होत तव या जग मांहि ॥७७३॥
ऐ सव भये गोत चौरासी, देवी यनकी सकल प्रकासी।
तव तै पूजन लगे दिहारी, सव श्रावगनि प्रतंग्या धारी ॥७७४॥

चौपई[1] : लिषी सुणी जैसी प्रति भासी, लषि विधिवत मति कीज्यौ हांसी।
इन श्रावग कै श्रापस मांहि, सगपरण है फुनि पांति जिमांही ॥७७५॥

दोहा
या विधि मुनि सवकौ हरचौ, रोग दोष दुष कष्ट।
श्रावग ठेहराये[1] विमल, सवै महाजन सिष्ट ॥७७६॥
तव श्रावकनि करी श्ररज, श्रहो महा मुनिराय।
क्रिया धर्म श्रावग तरणौं, मग हम देहु वताय ॥७७७॥
वोले मुनि वूभी भलै, सव सुनिए मन लाय।
जिनमत कै श्रनुसारि सव, दैहौं तुम्हैं सुनाय ॥७७८॥
प्रथम कहौं किरिया कछू, जो सधि श्रावै सार।
तामै कमी न कीजियो[1], करिकै परम विचार ॥७७९॥
दोय घड़ी कै प्रात उठि, मन मै जपि नवकार।
वहुरि करौ[1] किरिया सकल, जिह प्रकार श्राचार ॥७८०॥

---

७७१ : १ भांति। २ श्रामरिण।
७७३ : १ नरपोल्या। २ नांदलि।
७७५ : १ चौपई।
७७६ : १ ठहराए।
७७९ : १ कीजिग्रौ।
७८० : १ कहौं।

क्रिया वर्नन

निसि ऊन्हौं अथवा छर्ण्यो, जलतैं पात्र भराय।
वहर[1] भूमि के फिरन कौ, प्रासुक भुव मैं जाय ॥७८१॥
तामैं अैसी[1] जायगा, बरजी सुनिएं साहु।
वहर भूमि कौं भूलिहू, एती ठौर न जाहु ॥७८२॥

चौपई : जहा जु[1] कोई देषत जाणौं, फुनि ह्वै प्रेतनि[2] तणौं ठिकाणौं।
परवत मस्तगि अरु जल माहि, लषि कैं कवहू फिरिये नांही ॥७८३॥
फुनि वंवई देवल परहरिये, हलको लोक माहि नहि फिरिऐ।
फूलनि के वृषिनु कै नीचैं, डाभ वगन[1] की ठौहर वीचैं ॥७८४॥
हरी भूमि फुनि भूमि चिता की, गाय आदि पसु वैठक ताकी।
अगनि तणौं ह्वै कहूं[1] ठिकांणो, इन ठौहर मल मूत्र न ठाणौं ॥७८५॥
तलाव तैं दस हाथ परै ही, करै मूत्र यह वात वतै ही।
इक सत हाथ परै मल मोचैं, नदी तैं चौगुणौं न सोचैं ॥७८६॥
जलत अगनिस्वर सूरिज चदा, होय मुनिस्वर ग्यान अमदा।
कवहू इनकौं देषत जाई, मल फुनि मूत्र न मोचौ भाई ॥७८७॥
वांवैं हाथि[1] सऊच करीजे, जल कौ पात्र दाहिनैं लीजे।
जौ लगि हाथनि धोवै नाहीं, तौ लगि वस्त्रनि नाहि छुवाहीं ॥७८८॥

दोहा : अथवा वाहरि फिरन के, वस्त्र जिते जो होय।
तिन्हैं जुदे ही राषिए, छौंवो करै न कोय।७८९॥
नंदी और तलाव मैं, सीचौ लेहु न मित।
प्रथम निवाण मलीन ह्वै, अण छांणेयौं जल हुत ॥७९०॥
छाणे जलतैं धोइए, मांटी ले निज हाथ।
तामैं अैसी होय सी, मांटी तजौ अकाय ॥७९१॥

---

७८१ : १ बहरि।
७८२ : १ एति।
७८३ : १ ज। २ प्रेतन।
७८४ : १ उगन।
७८५ : १ कहीं।
७८८ : १ हस्त।

सोरठा : वृषि तलै की होय, फुनि ह्वै नंदी कूप की।
ह्वै तलाव की कोय, ह्वै मल-मूत्र समीपि[1] की ॥७९२॥
सो मांटी मति लेहु, धोवन कौं निज हाथ तुम।
हिंसा होत अछेहु[1], यातै वरजी है तुम्हैं ॥७९३॥
वांम हाथ वर तीन, प्रासुक मांटी तै धुपै।
फुनि मांटी जल लीन, दोऊ धोवै तीन वर ॥७९४॥

दोहा : दांतिण सूको कीजिये, जो सूको न मिलाय।
तौ पांचा परवी विनां, और कीजिये चार ॥७९५॥
जो कदाचि दांतिण तणौं, मिलै नही संजोग।
तौ द्वादस कुरला करै, मुष सुध होय मनोग ॥७९६॥
अब सनांन के करण की, विधि भाषत हौं तोहि।
जीवजंत लषि दूरि करि, फुनि आसुक भुव जोहि ॥७९७॥
प्रथम लगावो[1] तेल कौं, फुनि जल गरम मंगाय।
पहलै पग कटि धोय फुनि, मस्तगि जल नषवाय ॥७९८॥
करै मूत्र धोवै करनि, मइथुन अंति[1] सनान।
फिरि मल मोचै तौ करै, अर्ध सनांन प्रमांन ॥७९९॥
करि सनांन तै अंग सुचि, फिरि सामायक ठांनि।
नांम प्रभू कौ लेहु भवि, विरियांतनै निदांनि ॥८००॥
वहुरि प्रभू की कीजिऐ, पूजा अष्ट प्रकारि।
धरि प्रतिमां ह्वै तौ घरां, कै देहुरा मझारि ॥८०१॥
प्रभु कै सनमुषि[1] प्रथम ही, ठाढ़ो ह्वै कर जोरि[2]।
दरसन करि विनती करहु, विधिवत सीस निहोरि ॥८०२॥

'विनती'[1]

छप्पै : तुम दरसन तै देव सफल मो मनिष जनम-हुव।
तुम दरसन तै देव सकल अघ कष्ट टरि-गयव ॥

---

७९२ . १ समीप।
७९३ : १ अछेव।
७९८ : १ लगावै।
७९९ : १ अंत।
८०२ : १ सनमुष। २ करि जोरि।
८०३ : १ B missing ।

तुम दरसन तैं देव दोष दुष दालिद टलिहैं।
तुम दरसन तैं देव अमित मनवछित फलिहैं॥
करुनानिधान तारनतरन अब मैं तुम दरसन करिव।
वर तीन प्रथम जय निरसही कहि-कहि कर्मनकौं हरिव॥८०३॥

दोहा : नमसकार अष्टांग करि, दे प्रदक्षिणां[1] तीन।
जिन गुन पढि दरसन करहु, ह्वै प्रभु पद तल्लीन॥८०४॥

अरिल . प्रतिमा[1] ग्यारह आगुल लौं ह्वै घात की,
ताहि[2] पूजि डावै धरि यह सुभ वात की।
होय जुदी जायगा तहां डव्वा रहै,
घर मैं कबहु न राषिवि राजी गुर कहै॥८०५॥

दोहा : अब पूजा की विधि सुनहु[1], भविजन अति मन लाय।
जैसे भाषी है गुरनि, तैसें[2] कहौं बनाय॥८०६॥

चौपई : वेदी[1] तैं[2] लषि दिसि ईसान, मेर[3] काठकी[4] थापि सुजान।
तापरि[5] जल वटि धारिए चाहि, पांडुसिला की नकल सुताहि॥८०७॥
वेदी तैं जिन प्रतिमा लेय, ता जलवटि परि आय धरेय।
बहुरि दसौं दिगपालनि जान[1], जिनकौ विधिवत करि आह्वान॥८०८॥
पूजि करो तिनकौ सनमान, जथा जोग्य गुर-वचन प्रमांन।
फुनि ह्वै अर्घ प्रभू मुष पासि, विधि भिषेक प्रभु[1] करहु हुलासि॥८०९॥
कलस पंच भरि कै सुनि सीष, क्रमतैं जल फुनि रस लै ईष।
घ्रत अरु दूध-दही सुभल्पाय, बहुरो सर्व वोषधी[1] बनाय॥८१०॥
जुदे-जुदे सनांन करवाय, अधिक-अधिक वाजित्र वजाय।
फुनि अगोछि प्रतिमा सुभ काय, थापि ठौर निज श्री जिनराय॥८११॥

---

८०४ १ प्रदक्षण।
८०५ : १ प्रतमां। २ ताही।
८०६ : १ सुनौं। २ सो कछु।
८०७ : १ एक। २ वोर। ३ मेरु। ४ काष्ट। ५ तिनपरि।
८०८ · १ जांनि।
८०९ : १ जिन।
८१० . १ वोषदी।

प्रथम हि षेत्रपाल कौं पूजौ, तेल सिंदूर धूप लै दूजौ।
वटुक दीप फल गुड लै भूरि[1], पढिकै मंत्र पूजि भरपूरि[2] ॥८१२॥
फुनि प्रभु कौं करिकै आह्वांन, पुस्पनितं पढि मंत्र सुजांन।
आहवान के पुस्प[1] जु होय, प्रभु के चरननि परि[2] मेल्हौ लोय ॥८१३॥

मत्र आ स्वामिन सवौ, इत्यादिका त्रिपदि मत्र पढे।
ऊ ह्री अर्हं श्री पर्म व्रह्म अतरो वुतरावुतर सवौ षट् आह्वानन ॥
अत्र तिष्ट तिष्ट ठ ठ स्थापना अत्र मम सनेहतौ भव भव वषट् सन्निधापन ॥†

दोहा : मन वच तन करि सुद्ध सव, मुषतं मंत्र उचारि।
दर्व्य चढावो आठ भवि, प्रभु की ओर निहारि ॥८१४॥
जल गगादि सुगंध करि, धार चरन प्रभु देहु।
सो [लुटि] के तीनौं जगत, करत पवित्र सु ऐहु ॥८१५॥[1]

ऊ ह्री अर्हं श्री परम व्रह्मणे अनतानत ज्ञान सक्तये ॥इद मत्र ॥

दोहा : दर्व्य दर्व्य परि मंत्र यह, पढौ भवि सु मन लाय।
और पढत सो जोग्य नहि, नूंतन धरे वनाय ॥८१६॥[1]
गरभ[1] जनम[2] तप ग्यांन अरु, पंचम पद निरवांन।
यह मुषतै उच्चारिकै, दर्व्य चढाय महांन ॥८१७॥
चंदन अरु कपूर लै, केसरि मद्धि घसाय।
चरचहु श्री प्रभु के चरन, भव अताप मिटि जाय ॥
अषित सुगंधित ऊजले, कुंद पुस्प सम आंनि।
पांच पुज प्रभु अग्र धरि, मनु पुनि पुंज समान[1] ॥८१८॥
कुंद कंज मंदार[1] अरु, पहुप मालती जाय।
भ्रमर गुंज तिन परि करत, सो जिन चरन चढाय ॥८१९॥

---

८१२ : १ A भूरी। २ A पूरी।
८१३ : १ पहुप। २ missing।
८१५ : १ गंगादिक जल ल्याय कै, सउगधित करि लेहु।
अघ्रि पीठ जिन बिंव कै, जल धारा कौं देहु ॥८१६॥
८१६ : १ Not at all in B
८१७ : १ गर्भ। २ जन्म।
८१८ : १ समांनि।
८१९ : १ सदारु।

---

†The entire mantra not given in B.

नांना विंजन दधि घिरत, दूग्ध[1] भात पकवांन।
प्रभु के मुष आगें धरौ, कनक थाल भरि आनि ॥८२०॥
पच-दीप की आरती, जोय फेरि प्रभु पास।
जीति मोहवा जे भयो, पंचम ज्ञान[1] प्रकास ॥८२१॥
अगुर सांम[1] अवर अवर, बावन चदन लेय।
फुनि करि धूप दसांग भवि[2], प्रभु मुष आगें षेय ॥८२२॥
श्रीफलाम्र दाड़िम कपिथ, नारिंग पुंग विजोर।
इन दै आदि चढाय प्रभु, पद ढिगि सरस किसोर ॥८२३॥
करहु अष्ट द्रव्य ऐकठे, अरु नंद्यावत ठांनि।
दोव साथिया सहित भवि, धरो अर्घ सुषदानि ॥८२४॥
अैसै पूजा अष्ट विधि, करहु भाव करि सुद्ध।
वहुरचौं पढि जयमाल कौं, अर्घ चढाय सुवुद्ध ॥८२५॥
फुनि पढि सांति जु सुमन तै, पढो विसर्जन-मंत्र।
ता पीछै दै आसिषा, विघन-हरन जग जंत्र ॥८२६॥

आह्वान[1] (नैव जानामि इत्यादि मत्र)[2]

अह्वांन के पुष्प[3] की, देहु आसिषा लोय।
और ठौर के पुष्प तौ, विघन हरन नहि होय ॥८२७॥
वहुरि साखनि श्रवण करि, करै गुरनि की भक्ति।
दया भाव राषै सदा, दान देय विधि जुक्ति ॥८२८॥
अव क्रिया[1] सुनि श्राविका, तणी[2] कछुक हित ठांनि।
उठि प्रभाति नवकार मनि, जपै दया उर आनि ॥८२९॥
वहर भूमि दांतिण तणी, किरिया जिसै प्रकारि।
कहि आयो जो पुरिष कौं, सोही करै विचारि ॥८३०॥

चौपई : पैं निति तिरिया अर्घ सनान, करै[1] सुभाषी यहै प्रमान।
प्रासुक भुव लषिकै जिय जंत, मस्तगि परि जल नहि नाषत ॥८३१॥

---

८२० . १ दुगध।
८२१ : १ A ग्यांन।
८२२ · १ स्यांम। २ दसांग।
८२७ १ आहवान। २ not in B। ३ पुष्प।
८२९ . १ A किरिया। २ तनी।
८३१ : १ करहु।

दोहा : सूरज[1] कौ परकास ह्वै, तबै वुहारी देहु।
कै तौ कूटी मूज की, कै अति कोमल लेहु ॥८३२॥
जीव जंत कौं वख तै, पहलै दीजे टालि।
वहुरि वुहारी दीजिये, निज नेत्रनितै निहालि ॥८३३॥
चूल्हा की वांनी सवै, काढै लषि कै जीव।
फुनि पांडू पीली तणी[1], चौकौ देत सदीव ॥८३४॥
चौका यातै दीजिये, मृतक जीव जो कोय।
लेय[1] विलाई आदि जिय, वामग निकसे होय ॥८३५॥
नई भूमि जो होय तौ, जलतै छिड़का देहु।
जो चूनां की होय तौ, धोय सुद्ध करि लेहु ॥८३६॥
लकड़ी अथवा ऊपले, सूके चूल्है वालि।
वीघे ह्वै जालनि सहित, तिनकौं दीजे[1] टालि ॥८३७॥
निज वा उत्तिम[1] जाति तै, जल मंगाइऐ सुद्ध।
नीच जाति कौं भूलिहूं, छुवन न देहु सुवुद्ध ॥८३८॥
पांणी छांणौं जुगति सौं, कपड़ा[1] गाढो[2] ल्याय।
हाथ अढाई दोवरा, इक नांतिणौं कराय ॥८३९॥
ले करवा त्तल ढांकणौं, टपका परन न देय।
करै जिवांण्यां[3] जुगति सौं, फुनि वा जलकौं लेय[2] ॥८४०॥
होय जहां कौ जल जहां, भेजि देहु भविराय।
वामैं आछो जुगति सौं, दीजे ताहि मिलाय ॥८४१॥
चंदवा चूल्है परहडै, ऊपरि इक-इक राषि।
जाले जिय षोटी वसत, पड़ै नही यह साषि ॥८४२॥
नाज मगावो देषि कै, वीध्यौ घुण्यौं न होय।
ताहू कौं अति सोधिकै, षोटै पीसै जोय ॥८४३॥

---

८३२ : १ A सूरिज।
८३४ : १ A तणौं।
८३५ : १ A लेई।
८३७ : १ दीज्ये।
८३८ : १ उत्तम।
८३९ : १ कपरा। २ गाढौं।
८४० : १ तलि। २ देहु। ३ जिवाण्यौं।

चाकी ऊषल पोति कैं, पीसै षोटै नाज।
नीच जाति के हाथ तैं, ऐ न करावै काज ॥८४४॥
वहुरि चालरणी छाजले, चमड़ा विन[1] जे[2] होय।
तिनतैं छांरणैं फटकिये, नाज सु दोष न कोय ॥८४५॥

सोरठा : विन सोध्यौ ह्वै नाज, तरकारो धोयें विना।
रसोईन[1] मै साज, ए आवा दीजे नही ॥८४६॥
ऊन हाड़ चमडा ज, फुनि षोटी जो वस्त ह्वै।
रसोईन मैं साज, कवहु न आवा दीजिये ॥८४७॥
जे घर माहि होय, तौला हाडी फुनि चरी।
तिन्हैं उघाडी कोय, राषि न कवहू रांधता ॥८४८॥
घिरत तेल जल कोय, चमड़ै परस्यौ हू जु ह्वै।
ताहि न षावो कोय, वहुरि हींग को आदि दै ॥८४९॥
या विधि तिय सुचि ठांनि, पहरै उत्तम[1] वस्त्र कौं।
दया भाव उर आनि, करै रसोई जुक्ति सौं ॥८५०॥

दोहा : वहुरि पुरिष जीमरण करै, रसोईन[1] मैं पैठि।
तौ सनान करि कैं करै, ऊजल धोवति वेठि ॥८५१॥
जो सनान परभाति कौं, करि फिरि फिरवा[1] जाय।
तौ कटि[2] तक न्हाऐं विना, सुद्ध न ह्वै निज काय ॥८५२॥
प्रभू पूजि आवै घरा, जवै तयारी होय।
सवै रसोई की सुचित, तव यम[1] करिये लोय ॥८५३॥
करै ग्रहस्थी षट करम, जिन विन[1] सरै न कोय।
तिनको दोष जु आवसिक, जतन कियें हू होय ॥८५४॥
ताको दोष मिटै सु यम, सिघ सवकी कढवाय।
चढवावै भगवत कौं, जिन-देवल मैं जाय ॥८५५॥

---

८४५ १ विनि। २ जो।
८४६ १ रसोईनि।
८५० : १ A उत्तिम।
८५१ : १ रसोइन।
८५२ : १ A फिरिवा। २ तकि।
८५३ : १ इम।
८५४ : १ विनि।

फुनि द्वारा पेषण करै, जो मुनि आवै कोय।
ताकौं लै पडगाहि दै, सुद्ध अहार जु सोय ॥८५६॥
पेऐ कबहु न दीजिये, मुनि कौं भोजन दांन।
विन जल दधि घ्रत और जो, वास्यौ भोजन जांन ॥८५७॥
वांदे वांदी पांहुने[1], मत्र जंत्र अरु देव।
इनकै निमित कियो जु ह्वै, सो मुनि दै न तजेव ॥८५८॥
वीध्यौ झूठो[1] वरण-च्युत, रोग वधांवन वार।
सूको जीरण[2] चलित रस, रिति विरुद्ध दुषकार ॥८५९॥
आयो ह्वै परगांव सौं, चमड़ै दुरजन कोय।
परस्यौ विल्ली तुरक कौ, निंदनीक जो होय ॥८६०॥
फुनि परस्यौ ह्वै रजसुला, तिय घर की का आंन।
ए सब दूषण टालिकै, दै मुनि भोजन दान ॥८६१॥

रजस्वला[1] वर्नन

रजसुलानि तिय कौ वरन, कछु यक कहौं सुभाय।
ग्रंथनि कौ मत पाय कै, सो सुनिऐं चित लाय ॥८६२॥
होत रितवती जो त्रिया[1], जाके हैं ह्वै भेद।
ऐक प्रकृत इक विकृत है, विधि सुनि वहुरि निषेद ॥८६३॥
ह्वै जोवन मद रोग तैं, विकृत सु होय अकाल।
सो सुध ऐक सनांन तैं, त्रय दिन गनै न लाल ॥८६४॥
होत मास कै मास जो, ताहि प्रकृत[1] तू जांनि।
निसि आधी वीतै जु ह्वै, तवतैं त्रय दिन मांनि ॥८६५॥

छंद पद्धरी : इन तीनौं दिन कै मांझि जोय,
एकांत विषै तौ रहै सोय।

---

८५८ : १ पाहुनै। २ A निमति।
८५९ : १ झूठ्यौ। २ जीरन।
८६२ : १ A रजसुला।
८६३ . १ तिया।
८६४ : १ गिनै।
८६५ : १ A विकृत।

चित राषै सुस्थ[1] जु धारि मौंन,
परसै न काहि नहि करै गौंन ॥८६६॥
चरचा न करै गुर देव धर्म,
पसवोई सूघत नाहि पर्म।
दिन तीन जु नीकै सील पालि,
भोजन इक वेर करै सम्हालि ॥८६७॥
गोरस न पाय काजल करै न,
गध लेप न माला उर[1] धरै न।
मुष निज गुर नृप कुल देव-देव,
नहि लषै आरसी नहि लषेव ॥८६८॥
फुनि अपनौं भी जो पीव होय,
तिह साथि वोलिऐ हू न कोय।
वृष[1] तलि फुनि सोवत षाट नाहि,
जप मत्र हृदै हू नहि कराहि ॥८६९॥
जीमैं विन कासी और पात्र,
पातलि अंजुली मधि षुध्या[1] मात्र।
तीनौं दिन तौ करिकै सनान,
घर काज करै कोउ न आंन ॥८७०॥
चौथै दिन घटिका छह प्रमांन,
दिन चढै तवै करिकै[1] सनांन।
भीटै सव कौं भोजन करेय,
पचम दिन गुर फुनि देव सेव[2] ॥८७१॥
निज मंदिर मैं करिये सनांन,
नदी तलाव मति जाहु आन।
वहुरयौं अव सुनिये और वैन,
नर नारि वहुरि ऐती करै न ॥८७२॥

---

८६६ : १ सुसद्द।
८६८ . १ उ।
८६९ : १ वृष।
८७० : १ क्षुधा।
८७१ : १ करि सुध। २ सेय।

दोहा : तिय रतिवती जु जांनि कै, वतलावो मति कोय।
ऐक वास तें सुध ह्वै, वतलायें तें लोय ॥८७३॥
सपरस कीतौ कांचली, वस्त्रनि तें इक[1] हाथ।
रहिये दूरि सु तीन दिन, अवर सुनौं इक गाथ ॥८७४॥
वैठी सूती ह्वै जहां, फुनि भोजन जहां[1] कीन।
सो भुव लीपें सुद्ध ह्वै, नाही रहै मलीन ॥८७५॥
वालक पीवै जो सतन, छांटे तें सुध होय।
वड़े[1] वाल परसै जु को, न्हायें सुचि ह्वै सोय ॥८७६॥
रितिवती[1] जु जिह पात्र मै, भोजन कीन्हौं[2] चाहि।
तामैं भोजन जो करै, दोष लगै अति ताहि ॥८७७॥
वस्त्र-जुक्त न्हावै वहुरि, दोय करै उपवास[1]।
तव ताकौ दूषन मिटै[2], इम गुर करै प्रकास ॥८७८॥
पात्र वस्त्र रहवा[1] तणी, ठौहर परसै कोय।
न्हावै अपराजित जपै, सतव सु तव सुध होय ॥८७९॥
सुकवि कहालौं वरनवै, रतिवति दोष निहारि।
लोक-विरुध जो औरहू, टरै सु दीजे[1] टारि ॥८८०॥
अैसी रितिवति जांनियें, जो नारी घर मांहि।
तौ मुनि भोजन देहु मति, अति ही दोष लगांहि ॥८८१॥
वरनन ताके दोष कौ, करै[1] सुकवि अस कौंन।
द्वारा पेषण हूं न करि, ता दिनि[2] रहु[3] गहि मौंन ॥८८२॥
जो घर मै ह्वै सुद्धता, तौ मुनि कौं पडगाहि।
विधिवत नवधा भक्ति करि, भोजन दीजे ताहि ॥८८३॥
जव अहार कौं ले चुकै, तव वन[1] मुनि कौं जाय।
निज श्रावक निज द्वारलौं, आवहु भवि पहुचाय[2] ॥८८४॥

---

८७४ : १ A यक।
८७५ . १ जहं।
८७६ : १ वडो।
८७७ : १ रतिवती। १ कीनौं।
८७८ : १ A व पवास। २ टरै।
८७९ : १ A रैहवा।
८८० : १ दीज्ये।
८८२ . १ A missing। २ दिन। ३ रहि।
८८४ : १ उन। २ A पौंहचाय।

जो मुनि हूं नाहीं मिलै, श्रावक हू नहि होय।
तौ भूषे कौं दीजिऐ, दया भाव करि लोय ॥८८५॥

दांन वर्नन

जिनमत मांहीं दान ऐ, गुरनि वताये च्यारि।
सो सवही कौं देहु भवि, मनमैं हरष विचारि ॥८८६॥
लषिकै जांनि सुपात्र कौं, दीजे दान अहार।
औरनि कौं षुध्या निमति, देहु दया उर धारि ॥८८७॥
वोषदि[1] जोग्य वणाय करि, जथा-जोग्य तुम देहु।
रोग मिटै रोगीनु कौ, तुम भव भव सुष लेहु ॥८८८॥
ग्रथ जिते जिनमत तणें, तिन्हैं लिषाय स्वरूप।
कमडल पोछी वस्तिका, दीजे गुरनि अनूप ॥८८९॥
जीव जत प्रांणी सकल, ताकौं मारत कोय।
ताहि वचाय उपाय करि, अभय दांन यह जोय ॥८९०॥
ऐही च्यारयौ दान हैं, महा जगत मैं सार।
या भव वारापार तें, ले पौंहचावे पार ॥८९१॥
वहुरि श्रावकनि कौं कहे, दक्षि करन ए च्यारि।
पात्र सकल अरु सम दया, तेहू देहु विचारि ॥८९२॥
पात्र मुनिश्वर फुनि कहे, श्रावक समकितवान।
भोजन दे फुनि वस्तिका, कमड़ल पीछी दांन ॥८९३॥
सकल दक्षि यह जानि तू, परिग्रह कौ करि त्याग।
धांम कुटव धन आदिसौं, तजै सर्व अनुराग ॥८९४॥
सुत दै आदि वुलाय सव, सौंपै घर कौ भार।
आप निरापेषी रहै, पालै तप-व्रत सार ॥८९५॥
समदति याकौं कहत हैं, साध धर्मी ह्वै कोय।
अथवा वहण सु भाणिजी, होत जवाई सोय ॥८९६॥
हय गय रथ धन धान्य घर, वस्त्र आभरण कोय।
इन दै आदि जु दीजिए, जथा-जोग्य जिंह होय ॥८९७॥

८८८ १ औषधि।

दया दक्षि प्रांणी सकल, भूषे रोगी जांनि।
बालक बूढा तरुण कौं, जथा-जोग्य[1] दै दांन ॥८९८॥
ए च्यारचौं ही दक्षि हू, कहे जिनागम मांहि।
करि विचार अरु दीजिए, यामैं दूषन नाहि ॥८९९॥
दत्ति समै लषि दीजिए, दान सु निति प्रति देहु।
यथा-सक्ति तव आप निज, भोजन सुद्ध करिहु ॥९००॥
जिनमत के अनुसार तै, कहें दांन अरु दत्ति।
भाव सुद्ध करि दीजिऐ, सुभ फल पैहै[1] सत्ति ॥९०१॥
यथा-सक्ति दै दांन फुनि, निज जीमत ह्वै सुद्ध।
ऊजल धोवति वेठि करि, साध मौंन[1] सुवुद्ध ॥९०२॥

मौंनि वर्नन

भौंहा रेषे[1] पै नही, अंगुरी तै न वतांहि।
नांहि हलै न षंषारिये, सोही मौंन कहांहि ॥९०३॥
वहुरि जीमतां पालि भवि, अंतराय ये सात।
मांस मृतक मद रुधिर फुनि, हाड़ चाम छह वात ॥९०४॥
ए तौ नांहीं देषिऐ, फुनि जाको ह्वै नेम।
थाली मै आवै तऊ, मुष मैं देहु न केम ॥९०५॥
जिनमत मैं तजिवो कहे, ऐ वाईस अभष्य।
तिनकौं लेहु विचारि भवि, षावो तजौ प्रतष्य[1] ॥९०६॥

कवित कंद मूल वोला निसी भोजन तुषार विस,
मि. उ.: संधाणै सु-घोल[1] वडा कवहू न षाइऐ।
मधुमद मांषन चलितरस मांटी मांस,
वहु-वीजा वैगण अजांण फल गाइऐ॥

---

८९८ : १ A जोगि।
९०१ : १ ह्वै है।
९०२ : १ मौंनि।
९०३ : १ A राषे।
९०६ : १ A षतक्ष।
९०७ : १ औघोल।

तुछ फल पीलू षणां ऊवरा कठूंवरा[2],
सु वडवाला पीपला ऐ तनक न ल्याइऐ[3]।
श्रावग कौं यनकौ सरव त्याग कह्यौ,
ऐही वाईस अभष्य जिनमत मैं वताइऐ ॥६०७॥

दोहा : जो सधि आवै तौ भलै, मौंनि और अतराय।
पै ओ सकल हरीतु की, मरजादा करि षाय ॥६०८॥
धात-पात्र मैं जीमिवो, भाष्यौ[1] है उत्तकिष्ट।
जो न मिलै तौ जीमणौं, पातलि हू मैं सिष्ट ॥६०९॥
ता पातलि के भेद ह्वै, सूकी दीजे[1] त्यागि।
तामैं जीव पडै घनें, जाला रहै जु लागि ॥६१०॥
व्यौपारी जो होय सो, करै भलौ व्यौपार।
चाकर करि सुभ चाकरी, दर्व्य उपावो चार[1] ॥६११॥
पैसा षरे पसेव कौं, लाय रसोई माहि।
और तरह कौ होय सो, यामैं खरचौ नाहि ॥६१२॥
तजहु अथाणौ तेल कौ, फुनि वजार कौ चून।
छाछि पहर सोला पछै, षाण तणी करि मूंन ॥६१३॥
भुरडी कहैं जवारि की, छोला देहगी होय।
आदि वाजरे के सिरा, होला करहु न कोय ॥६१४॥
दोय ढालि ह्वै नाज की, ता संगि दही न षाय।
यातै वरजी है गुरनि, गलै जीव पडि जाय ॥६१५॥
होय चलित-रस जो वसत, फल दै आदि अहार।
वहुरि मिठाई हूं चलित, षावो तजौ प्रकार ॥६१६॥
तजौ ऊट का दूध की, षीर षाण भविराय।
यामै दोष लगै अधिक, हिंसादिक कौ आय ॥६१७॥

---

६०७ २ कठुवरा। ३ लाइए।
६०९ : १ A लाष्यौ।
६१० : १ वीज्ये।
६११ : १ A चारु।

दोय पहर दिन जब चढै, मद्धि घड़ी घटि दोय।
तब तैं सांमायक करै, च्यारि घड़ी लौ लोय ॥९१८॥[1]
बहुरि उतावलि होय को, तौ लषि व्यौंत विचारि।
नाम लेहु प्रभु कौ भले, घड़ी ऐक ह्वै च्यारि ॥९१९॥
या विधि ही संख्या तणौं, सांमायक तू ठांनि।
घड़ी दोय दिन बहुरि निसि, घड़ी दोय लै मांनि ॥९२०॥
निसि बीतै यक पहर जब, तब गृहस्थ जो होय।
निज तिय रिति सेवन करै, पहलै करहु न कोय ॥९२१॥
तामैं ते परवी दिवस, चौदसि आठै जांनि।
त्यागै निज पर सब तिया, ते जग मैं गुनषानि ॥९२२॥
पर-तिय कौ तौ जांनि कै, करै सर्वथा त्याग।
परवी दिन फुनि दिवस कौं, निज तिय तजि बड-भाग ॥९२३॥
यह तौ विधि तुमकौं कही, फुनि सुनिऐं भविराय।
घर मै धन बहु होय तौ, जिन-मंदिर चुनवाय ॥९२४॥
फुनि पूजा के उपकरण, नऐ नऐ करवाय।
झारी प्याला आरती, कलस जलौटि बनाय ॥९२५॥
ठौंणां अर धूपायणां, झांझि झालरी थार।
चंदवा आदि बनाय करि, धरि देहुरा मझार ॥९२६॥

---

९१८ : १ A includes the following additional lines between (917-918) without disturbing the verse order

तापरि साषि धर्मोमृत क्रतेन छप्पै

विरल मूंग उड़दादि धान्य दो दालि तणे जे।
काचे दधि तक्र मैं मेलि नहि षांण भणे जे॥
प्रात गले कै मद्धि जीव बहु उपजि मरै हैं।
धर्म्मामृत श्रावकाचार मै वरन करै है॥
मेवादि तणी दो दालि ह्वै तिनकौ विदल नहीं धरचौ।
भनि वषतराम अैसै सुगुर गृंथनि मै वरनन करचौ॥१॥

दोय दालि कौ धांन्य फुनि, दुग्ध मिलाय न षाहु।
पत्र जाति जे हरित हैं, चत्रमांस तजि साहु॥२॥

नए वनाओ विंव प्रभु, फुनि प्रतिष्टा कराय।
चव विधि संघ जिमाय भवि, तीर्थनि संग चलाय ॥६२७॥
धन पाये कौ फल यहैं, दांन पुन्य जिन-धर्म।
इनमै धन वहु षरचि हौं, तौ पैहौ सुष मर्म ॥६२८॥

अथ सूवा सूतिग वर्नन

दोहा[1] : सूवा सूतिग हू तणी, कछु यक सुणियें वात।
मरजादा माफिक करैं, मिटैं तास उतपात ॥६२९॥
सूवा की यह विधि तिया, करै चतुर्थ सनांन।
तव तैं मांस जु तीसरैं, जात जु गर्भाधांन ॥६३०॥
श्राव नाम ताकौ कहै, इक सनांन ह्वै सुद्ध।
मास पच[1] मैं षष्ट मै, जात सु सुनहु सुवुद्ध ॥६३१॥
नाम पात ताकौ कहै, सूवो दिन छह पांच।
गिनिऐ न्हांऐ सुद्ध[2] ह्वै, यहै मांनि तुव साच ॥६३२॥
होय सातवैं आठवें, नवैं सु कहि परसूति।
ताकौ सूवो दस दिनां, फुनि न्हाऐं सुध भूति ॥६३३॥

सूतिग वर्नन

दोहा[1] : वालक मूवो होय तौ, सूतिग गिणि दिन एक।
जौ वालक पौढो षिरैं, तौ त्रय दिनां गिणेक ॥६३४॥
वड़ो पुरिष[1] कोई षिरैं, तैं ताकौ सूतिग ऐहु।
दिन द्वादस औरैं क्रिया, लोक प्रसिद्ध करेहु ॥६३५॥
यातैं यह वरनन कियौ, मुनि कौं भोजन दान।
सूवा सूतिग माहि तुम, भूलि न देहु सुजान ॥६३६॥
ऐ तौ श्रावग के कहे, किरिया फुनि आचार।
तामैं तै आवे जु सधि, सो सव साधहु सार ॥६३७॥
अव सुनिऐ श्रावग-धरम, कछु यक कहौं वनाय।
तातैं अघ नसि स्वर्ग लहि, फुनि सिवगति कौं जाय ॥६३८॥

---

६२९ : १ missing।
६३१ : १ पांच।
६३२ : १ शुद्ध।
६३४ : १ A missing
६३५ : १ पुरष।

अथ श्रावग-धर्म वर्नन

दोहा : अनहिंसा रु अचौर्य फुनि, (अ)सति[1] ब्रंह्मचर्य पालि ।
परिगृह करि परमाण ऐ[2], अणुव्रत पंच सम्हालि ॥६३६॥
हिंसादिक कौं त्यागि हौ, सप्त विसन कै साथ ।
पलिहै जिनमत तोहि तव, जपिहै जिन-गुन-गाथ ॥६४०॥
सुनहु अहिंसा कौ कथन, भविजन अति मन लाय ।
जीव जंत प्रांणी सकल, तिनतें रहु समभाय ॥६४१॥
जीव-वध[1] मति कीजियो, कवहू मन वच काय ।
दुष-हू काहू जीव कौं, वस लागत मति ध्याय[2] ॥६४२॥
पुंन्य न पर-उपगार सम, जो ह्वै करवा जोग्य ।
पर-पीड़न सम पाप नहि, है यह धर्म मनोग्य ॥६४३॥
भोजन निसि कौं करन तजि, रांधै भी मति कोय ।
जीव पड़ै जामै अधिक, मरैं सु हिंसा होय ॥६४४॥
फुनि हिंसा के करन के, तजिए सकल उपाय ।
निज मन वच तन तें वहुरि, और सुनौं भविराय ॥६४५॥
हिंसा करवो त्यागि फुनि, त्यागि देन उपदेस ।
वृथा लगै उपदेस तें, अनरथ दंड विसेस ॥६४६॥
सो यह अनरथ दंड कौ, वरनन कहौं वनाय ।
गृंथनि के अनुसार तें, सोहू तजौ सुभाय ॥६४७॥

छंद भुजग प्रयात : कहै एक आछी हवैली वनावो,
कुवा वाग बाड़ी तलाई खुदावो[1] ।
परचौ मेह कीजे अवै क्यौं न षेती,
पलैगो कडूवा सवै नाज सेती ॥६४८॥
भए कापड़ा मैल मैं सो धुपावो,
अवै कातरचा क्यौं न वेगे करावो ।
पड़े षाट मै जीव धूपै नषावो,
परी सीस औ वस्त्र मै जूं कढावो ॥६४९॥

---

६३६ : १ (अ) injured २ यह ।
६४२ : १ वद्ध । २ ध्याय ।
६४८ : १ A षनावो ।

कहै व्याह बेटा[1] तणौ वेगि कीजे,
सुता के अवै हाथ पीला करीजे।
तिहारो जु वैरी अवै पासि आयो,
लडौ याहि मारो चहौ चैन पायो ॥६५०॥
वड़ो वृछ[1] है याहि वेगे कटावो,
भले षाट चौकी किवाड़ै वनावो।
पड़्यौ[2] है कजोडा[3] वुहारी न दीजे,
भली वावडी ऐक आछी न कीजे[4] ॥६५१॥
तिया कौं कहै सीस गुंथाय लीजे,
इन्हैं[1] आदि ए सीष काहू न दीजे।
कहौ तौ कहौ दांन पूजा करावो,
करौ वास औ देहुरा कौं वनावो ॥६५२॥

दोहा : मांगे हू दीजे नही, जातै हिंसा होय।
तिनहूं के कछु नांम ये, सुनियें लज्जा षोय ॥६५३॥

छंद भुजग प्रयात : मगे दैन कौं राछ आछे वनावैं,
करावैं प्रससा भलै चैन पावैं।
हला मूसला ऊंषला देत मागे,
कटारी छुरी षेट वदूक सागैं ॥६५४॥
कमांणौं क्रपांणौं कडाही[1] गंडासी,
कुसी चावका जेवड़ा मूंज फासी।
भले अकुसा नांथ आछी नकेलैं,
नई पोटली चांम की ले सकेलैं ॥६५५॥
षुरल्ला[1] षुरप्पा विसोले सु नाडी,
तई सांकलै डांग घोटा कुहाड़ी।
चकी फाहुड़ा आर औ दांतला जे,
वली आगि औ लाकडी ऊपला दे ॥६५६॥

---

६५० · १ वेटी।
६५१ १ वृछि। २ परयौ। ३ कजोरा। ४ करीजे।
६५२ · १ इन।
६५५ . १ कढाई।
६५६ १ षरल्ला।

षिलावै जुंवां भांगि आफू तमाषू,
मगी दे मुकररै तियाकै भिलाषू।
इनै आदि संसार मै वस्त हिंसा,
दिऐं दोष लागै कहो का प्रसंसा ॥६५७॥

दोहा : कहियतु ए षोटे विरणज, जिनतै उपजै पाप।
तो काहे कौं कीजिये, गहि श्रावग की छाप ॥६५८॥

छद पद्धरी : दारु सावण मद लोह जाति,
तिल लूंण सिघाड़ा चलित कांति।
वीघौ अन सहत[1] सु कंद मूल,
गुड़ तेल नीलि आफू समूल ॥६५९॥
इन आदि सवै हिंसा प्रकार,
व्यौपार तजौ भवि करि विचार।
लूण्यो घटिका द्वै राषि मीत,
पीछै तवाय[1] लीजे नचीत ॥६६०॥
निज कारिज रौंष हरचौ न काटि,
षेती मति करि मति तोलि घाटि।
उच्चाटन औ वसिकरन मंत्र,
इन आदि और औषधि[1] रु तत्र ॥६६१॥
जिनमै हिसा कौ लगै दोष,
सो न करि रहौ[1] गहि[2] कै संतोष।
पर जीवन कौं दुष कष्ट जांनि,
दे मति तजि आरति रौद्र ध्यांनि ॥६६२॥
हिसक जीवनि पालिऐ नांहि,
कुत्ता विल्ली वुगवो सताहि।
तूती मैनां सिकरा[1] सिचाण,
जलकुही वाज चडूल वाण ॥६६३॥

---

६५९ : १ सहेत।
६६० : १ तवाइ।
६६१ : १ A वोषधि।
६६२ : १ गहौ। २ रहि।
६६३ : १ सिकरे।

जैन शासनमें निश्चय और व्यवहार

(निश्चय और व्यवहारका विस्तृत तथा सर्वाङ्गीण प्रामाणिक विवेचन)

लेखक

सिद्धान्ताचार्य पण्डित वंशीधर व्याकरणाचार्य

न्यायतीर्थ, जैनदर्शन-साहित्यशास्त्री

बीना (सागर), म प्र

(जैन तत्त्वमीमासाकी मीमासा, भाग १, जैनदर्शनमे
कार्य-कारणभाव और कारकव्यवस्था आदि
रचनाओके लेखक)

भारतीय श्रुत-दर्शन केन्द्र
जयपुर

प्रकाशक

श्रीमती लक्ष्मीबाई (पत्नी पं० वंशीधर शास्त्री) पारमार्थिक फण्ड,

बीना (मध्यप्रदेश)